इसलिये जगन्मोहन वर्म्मादि अधलटके समाजियों को हम शुभ सम्मति देते हैं कि वेद विषय में सामश्रमी जी जब स्वयं असली सिद्धान्त से गिरे हुए हैं तब अन्यों को क्या सम्हालेंगे ?। (स्वयंसिद्धः कथं परान्साधयति;) सारांश यह है कि मीमांसक मत श्रुतिस्मृति पुराणादि के अनुकूल होने से सर्वथा आस्तिक मतहै । इसी कारण निरुक्त कारने मीमांसक मत को सर्वथा स्वीकार कियाहै ।

अब हम उसी तीसरे पक्षानुसार कुछ युक्ति प्रमाण इस देवता विषय में और भी लिखना चाहतेहैं । उस से पहिले आ० स० अं० ९ पृ० ४०६–४११ तकमें छपे जगन्मोहन वा सामश्रमी के लेख पर थोड़ा उत्तर शेष है सो भी लिख देतेहैं ।

आ० स० पृ० ४०७ में छपा पुरुषाकार देवता के खण्डन में जो सत्यव्रत सामश्रमी का निरुक्ताश्रित लेखहै उस का उत्तर हम ने ऊपर लिख दिया है कि वह निरुक्तकार का मत नहीं क्योंकि (इत्यपरं०) कहने से किसी अन्य आचार्य का एक देशी मतहै कि जो मीमांसा के मन्तव्य से भी नहीं मिलता । तथा आगे और भी इसका खण्डन आजावेगा । द्वितीय यह कि (इन्द्र इरांदृणाति०) इत्यादि कथन से जगन्मोहन मानते हैं कि " सूर्य और वायु आदि को ही वैदिक भाषा में इन्द्र कहते थे" सो इस का संक्षेप उत्तर यह है कि जगन्मोहन वा आ० समाजियों में कोई भी यह प्रतिज्ञा करे कि यदि वेद में तथा मूल निरुक्तादि में ऐसे प्रमाण हम दिखादेवें कि जिन से सूर्य वायु दोनों से इन्द्रदेवता पृथक् होना सिद्ध हो जावे तो हम अपना मत खण्डित मान लेंगे । परन्तु हम अनेक प्रमाण इस विषय पर देंगे । (इरांदृणाति०) इत्यादि में ऐसे भी कई पद होंगे जो सूर्य वायु में भी घट सकते हैं पर इतने से इन्द्र देवता का खण्डन नहीं हो सकता । क्योंकि बहुत से पद ऐसे भी हैं जिन का अर्थ सूर्य वायु में किसी प्रकार भी नहीं घट सकता है ।

निरुक्त दैवत काण्ड अ० ७ पा० २ खं० ९ में स्थान भेद से तीन देवता निरुक्तकार ने लिखे हैं । जिन में अग्नि को पृथिवी स्थान, वायु वा इन्द्र को अन्तरिक्ष स्थान और सूर्य को द्युस्थान देवता लिखा है । जब कि इन्द्र देवता का स्थान मध्यम है और सूर्य का द्युलोक स्थान है तब सूर्य का नाम इन्द्र मानना कदापि घट ही नहीं सकता । यदि स्थान नाम लोक भेद होने पर भी इन्द्र और सूर्य एक ही माने जावें तो तीन देवता मानने का पक्ष ही निरुक्तकार का कट जायगा और दो ही देवता रह जावेंगे । इस से सिद्ध हुआ कि मध्यम स्थान इन्द्रदेव से सूर्य देवता पृथक्हैं । द्वितीय (इन्द्रवायू इमेसुता०)

इत्यादि वेद मन्त्रों में यदि इन्द्रवायु एक ही देवता होते तो वेद में पृथक् २ एक साथ द्विवचनान्त दो नाम लेना बन ही नहीं सकता। अर्थात् इन्द्र वायु दो ही देवता मानने से मूल वेद में कहना ठीक होगा। यदि कोई कहे कि भिन्न २ दो पात्रों में रक्खा एक ही जल, पात्र भेद से दो कहावेगा। तब इस का उत्तर यह है कि जल में स्थान भेद से भेद है वास्तव में भेद नहीं है। इस से वे दोनों जैसे जलही कहावेंगे वैसे यहां भी दोनों का नाम एक ही होना चाहिये। हां यह हमें भी स्वीकार है कि इन्द्र वायु दोनों मध्य स्थान देवता हैं। इस से दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक घर में रहने वाले अनेक कुटुम्बी परस्पर विशेष मेल रखते हुये कहते और मानते हैं कि हम सब एक ही हैं। हम सबमें कुछ भी भेद नहीं तब इसका अभिप्राय यही होगा कि हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध वा मेलहै विरोध कुछ नहीं किन्तु यह मतलब कदापि न होगा कि वे घर वाले कुटुम्बी अनेक व्यक्ति न ठहरें सब एक ही शरीर ठहर जावें। जब कि एक ही कपास रुई वा सूत के परिणाम रूप कपड़ा (गजी, गाढ़ा, मारकीन, खासा, मलमल आदि) भिन्न २ माने जाते हैं तब यदि किसी प्रकार इन्द्र वायु दोनों का एक प्रकृति देवता सिद्ध होने पर भी निर्विवाद भेद मानने पड़ेगा। प्रयोजन यह कि भेद वाद पक्ष को मानने वाला कोई भी किसी युक्ति प्रमाणसे इन्द्र, वायु तथा सूर्यको एकही वस्तु होना कदापि सिद्ध नहीं कर सकता। वेद में उपाधि भेद से सर्वत्र ही भेद वाद पक्ष को ले कर अनेक देवता कहे गयेहैं। निरुक्त के तीन देवता भी भेद वाद में ही बन सकते हैं। यदि अभेद वाद पक्ष से विचार करेंतो जिस मूल उपादान तत्त्व से सब कुछ प्रकट हुआ दीखता है। वही एक वस्तु ठहरेगा दो तीन आदि देवता भी सिद्ध नहीं होंगे। इस से सिद्ध है कि ये देवता भिन्न २ हैं। निरुक्त में मध्य स्थान देवताओं का वर्णन अ० १० के प्रारम्भ से ही चलाया गयाहै। उस में प्रथम द्वितीय दो खण्डों में वायु का वर्णन है तीसरे खण्ड में वायु सम्बन्धी इन्द्र देवता का वर्णन है चौथे पांचवें खण्ड में वरुण देवता का और छठे सातवें खण्डमें रुद्र देवताका वर्णन आता है। और ८।९। १० खण्डोंमें इन्द्र देवता का वर्णन किया गया है इस से भी स्पष्ट सिद्ध है कि इन्द्र देवता वायुसे भी भिन्न ही हैं। यदि वायुका अवान्तर भेद ही इन्द्र देवता होते तो वायुके साथ ही इन्द्रका भी व्याख्यान निरुक्तकार करते। सो ऐसा न करके बीचमें वरुण और रुद्र देवताका वर्णन करके पीछे इन्द्रका व्याख्यान किया इससे

भी इन्द्रका पृथक् देवता होना सिद्ध है। तीसरे खण्डमें वायु सम्बन्धी इन्द्र कहने का प्रयोजन यह है कि जैसे पृथिवी के भीतर पृथिवी में मिला हुआ जल पृथिवी संबन्धी कहावेगा और गदले जल में मिला हुआ पृथिवी का अंश जल संबन्धी पृथिवी कहावेगा परन्तु इतने से पृथिवी और जल एक वस्तु न हो कर दो ही तत्त्व भिन्न २ सब बुद्धिमानों को मानने पड़ेंगे। इसी के अनुसार वायु इन्द्र सूर्यादि देवताओं का एक दूसरे से जल और पृथिव्यादि के तुल्य परस्पर सम्बन्ध सिद्ध होने पर भी वे सब भिन्न २ ही मानें जावेंगे। जैसे. तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि—

भूरिति वा अग्निः। भुवइति वायुः। स्वरित्यादित्यः।

अर्थ—भूमि ही अग्नि है। भुवः यही वायु है और स्वः यही आदित्य है। इस लेख के अनुसार क्या सामश्रमी तथा जगन्मोहनादि तेवतावाद के विपक्षी लोग अग्नि और पृथिवी को एक ही मानलेंगे? वा पृथिवी और अग्नि को भिन्न २ तत्त्व मानेंगे?। यदि एक ही मानने का दावा करें तो पांच तत्त्व मानने का विचार खण्डित हो जायगा। तब चार तत्त्व भी खण्डित हो सकेंगे। यदि पृथिवी और अग्नि को दो तत्त्व भिन्न २ उन को मानना पड़ा तो वैसे ही इन्द्र वायु और आदित्य देवताओं को भी भिन्न २ अवश्य मानने पड़ेगा। इसी के अनुसार सामश्रमी आदि को उचित है कि वे बृहदारण्यकोपनिषदादि के निम्न लिखित प्रमाणों को देख २ कर वेदवेत्ता होने की उछल कूद न मचावें। वेद का तत्त्वार्थ वेत्ता होना महा कठिन है।

कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति। स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति। कतमः स्तनयित्नुरित्यशनिरिति। कतमो यज्ञइति पशवइति ॥ ६ ॥

यह बृहदार० उप० अ० ५ ब्रा० ९ कं० ६ में लिखा है। यदि इस प्रमाण के अनुसार स्वा० दयानन्द जी तथा उन के अनुयायी पं० सामश्रमी आदि यह दावा करने को तयार हों कि (जैसा कि निरु० अ० १० खं० ८ के भाष्य पर 'इरांदारयति' सामश्रमी ने बृहदारण्य के ऊपर लिखे प्रमाण का संकेत किया है) विद्युत् (विजली जो चमकती है) का ही नाम इन्द्र है विजुली आदि प्रत्यक्षों से भिन्न इन्द्र देवता कोई नहीं है तो उन पर यह आपत्ति

उसी प्रमाण से आजायगी कि यज्ञ ही प्रजापति (परमेश्वर) है यज्ञ से भिन्न ईश्वर प्रजापति भी कोई वस्तु नहीं । और यज्ञ भी कोई धर्म कर्म नहीं क्योंकि पशु ही यज्ञ हैं । तब आ० समाजियों की–सर्वं स्वाहा (अर्थात् नियत धर्म पूजा पाठ देव पितर दान पुण्यादि सब का त्याग खण्डन करके जो कुछ हल्दी धनिया कूड़ा कर्कट मिला सब का-स्वाहा) भी होम यज्ञ नहीं ठहरेगा पशुओं का ही नाम होम यज्ञ मानने पड़ेगा ।

और यदि यह अर्थ करने लगें कि पशु ही यज्ञ के साधन हैं गौ आदि पशुओं के घी दुग्धादि से ही यज्ञ हो सकता है अन्यथा नहीं इसी से पशुओं को यज्ञ कहा है इस से पशु और यज्ञ भिन्न २ दो पदार्थ हैं । यह मानेंगे तो वैसे ही इन्द्र देवता की शक्ति विद्युत् के द्वारा ही हम को प्रकट होती है । जिस विद्युत् की भयानक गर्जन के प्रबल अद्भुत उद्वेजक शब्द से सभी का हृदय एक साथ कम्पायमान हो जाता है । उस विद्युत् शक्ति की अद्भुत चमक और असह्य ध्वनि को देख सुन कर सनातन धर्मी आस्तिक लोग तो इन्द्र देवता की महिमाका पूर्ण विश्वास करते हैं कि हे इन्द्रदेव! तुम्हारी महिमा अपार है तुम चाहो तो इसी विद्युत रूप अलौकिक शोभा कान्ति युक्त वज्र से एक क्षण मात्र में भूमण्डल भर का नाश कर सकते हो तुम्हारी दैवी शक्ति अचिन्त्य है । वेदादि में लिखी तुम्हारी महिमा सब सत्य है । और नास्तिक लोग शक्ति मात्र को भौतिकांश मान कर दैवी परोक्ष शक्तिमान् को तिलाञ्जलि देते हैं । मेघ वर्षाना इन्द्र देवताका ही काम श्रुति स्मृति पुराणादि सर्वानुमत सिद्ध है और मेघ वर्षने द्वारा अन्नादि उत्पन्न होता है। इस लिये इरा नाम अन्न का उत्पादक भी इन्द्र देवता है । ऋग्वेद सं० अ० २ अध्याय ६ वर्ग ७ मन्त्र १ में लिखा है कि—

योजातएवप्रथमोमनस्वान् देवोदेवान्क्रतुनापर्यभूषत् । यस्यशुष्माद्रोदसीअभ्यसेतां नृम्णस्यमह्नासजनासइन्द्रः ॥ (अस्योपरिनिरुक्तम्) यो जायमानएव प्रथमो मनस्वी देवो देवान् क्रतुना कर्मणा पर्यभवत्पर्यगृह्णात् पर्यरक्षदत्यक्रामदिति वा यस्य बलाद् द्यावापृथिव्यावप्यबिभीतां नृम्णस्य मह्ना बलस्य महत्त्वेन स जनास इन्द्र इत्यृषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता ॥ निरु० अ० १०। पा० १ खं० १०॥

भाषार्थः—इस मन्त्र का निरुक्त तथा निरुक्त के भाष्यकार भगवत् दुर्गाचार्य के लेखानुसार सीधा २ निर्विवाद अक्षरार्थ यह है—इस मन्त्र के गृत्समद ऋषि (मन्त्र के द्रष्टा साक्षात्कर्त्ता) कहते हैं कि—हे मनुष्यो ! जो प्रकट वा उत्पन्न होते ही सब से अव्वल दर्जे का बुद्धिमान् होता है अर्थात् जैसे मनुष्य उत्पन्न हो कर काल पाके पढ़ने सत्संगादि करने से बुद्धिमान् होते वैसी दशा इन्द्र की नहीं किन्तु वे इन्द्र देव दिव्य शरीर में प्रकट होते ही सर्वोपरि बुद्धिमान् होते हैं। वह इन्द्रदेव अपने उग्र वा प्रबल कर्मों द्वारा अन्य देवों को परिभव करता वा अपने अधीन (काबू में) सब अन्य देवताओं को कर लेता है वा सब ओर से सब देवों की रक्षा करता है। अथवा अपनी प्रबल शक्ति से सब का अतिक्रमण उलंघन करता है। जिस इन्द्रदेव के बल से आकाश तथा पृथिवी भी डरते हैं। जिस के बल की महिमा सर्वोपरि अपार असीम है। इन्द्र देवता ही का अंश रूप बल मनुष्यों में काम करता है। वह इन्द्र ऐसा है। इस प्रकार इन्द्र देवता को दिव्य दृष्टि से साक्षात् देखते जानते हुये गृत्समद ऋषि की इतिहास पुराणादि से सिद्ध इन्द्र की महिमा कहने में प्रीति है। क्या यह अर्थ किसी जड़ पदार्थ को इन्द्र मानने पर कभी घट सकता है?। अर्थात् कदापि नहीं। इसी कारण सामश्रमी ने इस मन्त्र के निरुक्त पर कान भी नहीं हिलाया चुप्पी साध गये। प्रयोजन यह कि वेद के सैकड़ों मन्त्र ऐसे विद्यमान हैं जिन में कही इन्द्र की महिमा चेतन देवता मानने पर ही घट सकेगी। जड़ में नहीं इस से इन्द्र देवता का चेतन होना सिद्ध है क्योंकि किसी जड़ वस्तु में जब अल्प बुद्धिमत्ता भी सिद्ध नहीं होती तो सर्वोपरि बुद्धिमत्ता जड़ में कैसे होगी ?। अन्त में सामश्रमी का (तदवास्तविकम्) इत्यादि जो लेख संस्कृत में है जिस का संक्षेप आशय यह है कि "अग्नि आदि देवताओं का स्वर्ग में रहना, वहां भी उनके भिन्न २ स्थान मानना, ब्रह्मादि के चार मुख आदि मानना, उनके स्त्री पुत्र, सवारी, भोजन, रागद्वेषादि मानना, यह सभी मूषक, मार्जार, काक, कपोत आदि की कल्पित कथाओं के तुल्य देवता विषय को समझाने के लिये कल्पना मात्र है। जैसे हितोपदेशादि को पढ़ते समय बालक अज्ञानी होने से काक उलूकादि की कथाओं को सच्ची मानते हैं पीछे ज्ञान बढ़ने पर वे ही बालक बड़े होकर उन कथाओं के सत्य होने का कदापि विश्वास नहीं करते। इसी के अनुसार वेद के ज्ञान से सर्वथा शून्य बालक वत् अज्ञानी पौराणिक लोग पुराणादि में लिखे कल्पित देवता विषय को सच्चा मानकर विश्वास करते हैं। किन्तु

वेदवेत्ता विद्वान् लोग (जैसे सामश्रमी वा आर्यसमाजी हैं) उन कल्पित मिथ्या पुराण कथाओं पर विश्वास नहीं करते हैं" ।

पाठक गण ! यह ऊपर का लेख सामश्रमी के संस्कृत लेख का अनुवाद है । वास्तव में यह लेख अच्छा नहीं किन्तु नास्तिकता से भरा हुआ है। ऐसे लेखों का पूरा २ समाधान तो निरुक्त ग्रन्थ का पूर्ण भाषानुवाद में होगा (जिस का विचार हो गया है थोड़े ही काल में ब्रह्मप्रेस इटावा से निकलेगा) तो भी संक्षेप से हम कुछ लिखे देते हैं वास्तविक और कल्पना मात्र की असलियत पर जब कोई सच्चा विद्वान् पुरुष ठीक २ शोक विचार करेगा वा अब तक जिन लोगों ने इस विचार को अन्त तक चालया है तब यही सिद्धान्त वा सारांश निकला वा आगे भी निकलेगा कि सबका मूल एक ही आत्म वस्तु वास्तविक सत्य है तथा उस से भिन्न जड़ चेतनादि सभी कल्पना मात्र है । इस विचार के अनुसार यदि सामश्रमी का विचार होता तो हम भी मानलेते कि हां सभी कल्पित है । परन्तु यह विचार सामश्रमी का उन के लेख से सिद्ध नहीं होता । वे कहीं इन्द्र शब्द का अर्थ वायु विशेष और कहीं सूर्य लिखते हैं । तो जान पड़ता है कि सामश्रमी के मत में वायु, सूर्य कल्पित नहीं, अर्थात् जड़ वस्तु जो आंखों से दीखता है वह कल्पित नहीं। यह मानना वा कहना ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि-पृथिवी में से ईंट, पत्थर, घट, पटादि की कल्पना मिथ्या है । पर सुवर्ण, चांदी आदि तो अच्छा ठीक है कल्पित नहीं । तो उस का कथन मिथ्या होगा क्योंकि घटादि के तुल्य सुवर्णादि भी कल्पित हैं और सामश्रमी तथा आर्यसमाजी जब सभी कल्पित हैं कि जिन के शरीर पृथिव्यादि तत्त्वों से भिन्न कुछ वस्त्वन्तर नहीं केवल कल्पनामात्र हैं । तब जो स्वयं मिथ्या कल्पित हैं वे अन्य कल्पित जड़ पदार्थों को कैसे ही सत्य नहीं मान सकते। हां यह हम भी मानते हैं कि सभी सनातनधर्मी देवता विषय के सूक्ष्म गूढ़ाशयों को नहीं समझते । वेद के अनुसार देवता विषय पर गम्भीर विचार वा लेख अवश्य होने चाहिये । इसका मुख्य कारण यह है कि न्याय व्याकरणादि पढ़ने वाद तो वैदिक ग्रन्थों को देखने विचारने शोचने की फुरसत ही पं० लोगोंको नहीं मिलती वे लोग उतने ही से अपने को पूर्ण पण्डित मान कर कृतकृत्य हो जाते हैं । और जो व्याकरण के बोध से शून्य होते वेही प्रायः वेदपाठी बनते हैं। उन में वेदार्थ

समझने की शक्ति नहीं होती प्रयोजन यह कि वैदिक सिद्धान्तों पर गम्भीर विचारों का सम्प्रति अभाव सा हो गया है। इस देवता विषय में पुराणों का विचार छोड़ कर हम आगे व्यास जी, पतञ्जलि मुनि, उपनिषद् और श्री स्वामि शंकराचार्य जी के कुछ प्रमाण लिखेंगे जिन से देवता विषय की ठीक २ सिद्धि होगी। और इन प्रमाणों से यह भी सिद्ध होगा कि देवता विषय कल्पना मात्र नहीं किन्तु सत्य है—

निरुक्तकार के लिखे चौथे पक्ष पर (कि जो मीमांसकों के सम्मत पक्ष है) हम पूर्व लिख चुके हैं कि वह सर्वथा आस्तिक पक्ष है और वेदानुयायी सब सनातन धर्मियों को सर्वथा शिरोधार्य मन्तव्य है।

अब निरुक्त का तीसरा पक्ष यह है कि (उभयविग्राः स्युः) देवता दोनों प्रकार के हैं पुरुषों के तुल्य हाथ पांव आदि विग्रह वाले भी हैं और विग्रह रहित अर्थात् यथेच्छ विग्रह (जब जैसा चाहें रूप धारण करलें) वाले भी हैं यह बात आगे लिखे प्रमाणों से विशेष कर सिद्ध होगी।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ योगसू० १। १९ ॥

व्यासः—विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः तेहि स्वसंस्कारमात्रोपयोगेन चित्तेन कैवल्यपदमिवानुभवन्तः स्वसंस्कारविपाकं तथाजातीयकमतिवाहयन्ति ॥

भाषार्थ—विदेह नाम देवता और प्रकृतिलीन लोगों को जन्म से ही अनायास योग समाधिस्थ होने की योग्यता स्वयमेव प्राप्त होती है। मनुष्यों को श्रद्धादि उपायों से भी कठिनता से किसी को योग सिद्ध होता है। जैसे पक्षियों में जन्म से ही उड़ने की शक्ति स्वाभाविक होती है। पर विलायती लोग पंख लगा २ कर उड़ना सीखते पंख टूट जाने पर मर भी जाते हैं। देवता विदेह हैं। उन के स्थूल भूतों से बने मनुष्यों के से शरीर नहीं हैं किन्तु सूक्ष्म शरीरी होते हैं। अपने संस्कार मात्र चित्त के उपयोग से मोक्ष के आनन्द का अनुभव करते हैं। उन में पुनरावृत्ति के संस्कारों का शेष होना ही मोक्ष से कमती है। अन्यांशों में मुक्तों के तुल्य हैं। आवृत्ति के समय देवत्व का संस्कार उन से छूट जाता है। इस प्रमाण से सिद्ध है कि देवता स्थूल वा जड़ नहीं किन्तु योग समाधि सिद्ध मोक्षानन्द भोगने वाले चेतन हैं॥

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ योग सू० २। ४४ ॥

व्यासः—देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं

गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्त्तन्त इति ॥ मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ योगसू० ३ । ३१ ॥ व्यासः–शिरःकपालेऽन्तश्छिद्रं प्रभास्वरं ज्योतिस्तत्र संयमं कृत्वा सिद्धानां द्यावापृथिव्योरन्तरालचारिणां दर्शनम् ॥ स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात् ॥ योगसू० ३ । ५०॥ व्यासः–तत्र मधुमतीं भूमिं साक्षात्कुर्वतो ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवाः सत्त्वविशुद्धिमनुपश्यन्तः स्थानैरुपनिमन्त्रयन्ते–भोइहास्यतामिह रम्यतां कमनीयोऽयं भोगः कमनीयेयं कन्या रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते वैहायसमिदं यानममी कल्पद्रुमाः पुण्या मन्दाकिनी सिद्धा महर्षय उत्तमा अनुकूला अप्सरसो दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी वज्रोपमः कायः स्वगुणैः सर्वमिदमुपार्जितमायुष्मता प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरममरं स्थानं देवानां प्रियम्।

भावार्थः–जो योगी वेदवेदान्त का स्वाध्याय अर्थात् श्रद्धा शुद्धि और नियम के साथ निरन्तर सावधानी से वेद का अभ्यास (जप–पाठ) करता है उस का अपने उपास्य इष्ट देवता के साथ मेल मिलाप होने लगता है। अर्थात् देवता ऋषि और सिद्ध (ऋषि आदि भी देवता कोटि में होने से देवता ही हैं) लोग उस को दर्शन देते और उस के कर्त्तव्य में सहायता देते हैं। इस से सिद्ध है कि स्वाध्यायादि किसी खासियत के विना देवता लोग साधारण मनुष्य को दर्शन नहीं दे सकते। क्या सामश्रमी वा जगन्मोहनादि इन स्वाध्याय से सन्तुष्ट होके दर्शन देने वाले देवतों को जड़ मानेंगे। वा कल्पित कहेंगे ?।

योगी पुरुष जब अपने मूर्द्धा में धारणा ध्यान समाधि रूप संयम का वार २ अभ्यास करता है तब उस को सिद्धों का दर्शन होता है। अर्थात् शिर के कपाल (खोपड़ी) में भीतर एक छिद्र है जो छोटे बच्चों के शिर में लपकता है। उस छिद्र में एक प्रकार की ज्योति है उस में संयम करने से आकाश पृथिवी के बीच अन्तरिक्ष में सूक्ष्म रूपों से विचरने वाले सिद्धों का योगी को दर्शन होताहै। इसी के अनुसार सूक्ष्म देवता भी अन्तरिक्ष में रहतेहैं कि जिन का दर्शन योगी को होता है। क्या ये देवता ऋषि और सिद्ध कोई जड़ वस्तु हैं ? अथवा ये मनुष्यादि के तुल्य स्थूल हैं तो सभी को क्यों नहीं देखते ?। इस का उत्तर जगन्मोहन वा सामश्रमी जी बतावें ॥ (शेष आगे)

सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग

इस अंक में हम यह दर्शाना चाहते हैं कि मुक्ति क्या पदार्थ है?। उसे व्यासादि महर्षियों ने नित्य माना है वा अनित्य, उपनिषदों में इस के विषय में क्या कहा है और मंत्र संहिता में इस के नित्य होने में क्या प्रमाण है?। पर "मुक्ति नित्य है" यह परम सिद्धान्त है। इस के प्रमाण देने के पूर्व हम यह दिखलाना चाहते हैं कि स्वामीदयानंद ने मुक्तिसदा काल के लिये नहीं अर्थात् अनित्य मानी है और उस के लिए सांख्य दर्शन का यह सूत्र अपने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है देखिये सत्यार्थ प्रकाश द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २३९।

"इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः" सां० सूत्र०

इस का अर्थ भाषा में उनने यह किया है "जैसे बंध मुक्त जीव इस समय हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं। अत्यंत विच्छेद बंध मुक्ति का कभी नहीं होता "किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती" (अर्थात् मुक्ति अनित्य है) ॥

हे पाठक गणो! यहां यह विचारना चाहिये कि यह सूत्र किस विषय का है यहां पर विषय द्वैता द्वैत अनेक जीववाद और एक जीववाद का है वेदान्ती के विरुद्ध सांख्य मत अनेक जीववाद परक है और वह सूत्र १५७-१५८ १५९ (सां० द० अ० १) से स्पष्ट सिद्ध है-

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम्। १५७ ॥ इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः। १५९ ॥ अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम्। १५८ ॥ इदानीमिव०-

सूत्र पर विज्ञान भिक्षु का भाष्य यह है-

"अनन्तत्वादात्मनां क्रमेण मुक्तिरपि स्यात् संसारोच्छेदोऽपि न स्यात्। इदानीमिव सर्वत्र भविष्यत्कालेऽपि मुक्तिर्भविष्यतीति नात्यन्तोच्छेदोऽस्य प्रवाहनित्यत्वात्" ॥

भावार्थ-आत्माओं के अनित्य होने से मुक्ति क्रम २ से होवे परंतु संसार का उच्छेद नहीं हो सकता जैसे वर्त्तमान काल में उसी प्रकार सर्वत्र भविष्यत्काल में भी मुक्ति होगी इस लिये अत्यंत उच्छेद नहीं हो सकता क्योंकि संसार का प्रवाह नित्य है। प्रकरण देखने से स्पष्ट ज्ञात है कि सांख्य का मत है कि जीव अनेक हैं न कि मुक्ति अनित्य है क्योंकि मुक्ति नित्य सदैव काल के लिये है यह सांख्य सूत्र १७ अ० ६।

"न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः" से स्पष्ट सिद्ध है। महर्षि कपिल मुक्ति सदा के लिये मानते हैं मुक्ति से लौटना नहीं मानते हैं देखिये विज्ञान भिक्षुकृत भाष्य–

ननु मुक्तेरपि कार्यतया विनाशापत्त्या पुनर्बन्धः स्यादिति। तत्राह—

न मुक्तस्येत्यादि (सां० द० अ० ६ सूत्र १७) यहां सूत्र १८ और १९ भी विचारिये ॥

अपुरुषार्थत्वमन्यथा।१८॥ अविशेषापत्तिरुभयोः।१९॥

हम वारंवार ब्राह्मणसर्वस्व के पूर्व अंकों में यह सिद्ध कर चुके हैं कि स्वामी दयानंद ने आद्योपान्त कोई शास्त्र नहीं पढ़ा और न वेदशास्त्र किसी गुरु से अधीत किये हठात् अपने मन माना अर्थ अपनी बात को किसी प्रकार सिद्ध करने के लिये लगा देते न प्रकरण देखते न विषय देखते और एक बात यह भी है कि किसी सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ में लिखते हैं कि मुक्ति सदैव के लिये है और किसी सत्यार्थप्रकाशादि में लिखते हैं कि मुक्ति अनित्य है अर्थात् मुक्ति से लौटना होता है इस विषय में आप स्वा० द० जी वेद शास्त्र और समस्त विद्वानों से विरुद्ध हैं। कदाचित् स्वामी दयानन्द ने (इदानीमिव०) सूत्र का अर्थ भागुरि मुनि कृत भाष्य से किया होवे (देखिये सत्यार्थप्रकाश द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ७१ यहां पर आपने प्रामाणिक भाष्यों के केवल नाम लिखे हैं) महती कृपा होगी कि कोई आर्यसमाजी महाशय इस भाष्य का पता हमें भी बतलावे ॥

(हम यहां अपने पाठकों से क्षमा मांगते हैं कि हमने प्रत्येक सूत्र वाक्य और मन्त्र का अनुवाद भाषा में नहीं किया केवल मुख्य २ सूत्रादि का अनुवाद किया है वे स्वतः भाषानुवाद कर सकते और समझ सकते हैं)

अब वेदान्त दर्शन से यह दिखलाते हैं कि मुक्ति सदैव के लिये है मुक्ति से लौटना नहीं है देखिये वेदान्त—दर्शन अ० ४ सू० २२

अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्।

मुक्ति से लौटना नहीं है इस के लिये शब्द प्रमाण है। वह शब्द प्रमाण निम्न लिखित वाक्यों में है ॥

ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते नच पुनरावर्त्तते ॥ छान्दोग्ये ॥ अपहतपाप्माऽभयं रूपम् ॥ बृहदारण्यके ॥ तेषु ब्रह्म-

लोकेषु परापरावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः । बृहदारण्यके । ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः । श्वेताश्वरे ॥ ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः ॥ भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः । क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥ यदापश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्त्तारमीशंपुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदाविद्वान् पुण्यपापेविधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति । नास्याब्रह्मवित्कुले भवति । तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ मुण्डके ॥ एतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते ॥ प्रश्नोपनिषदि ॥ धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ तलवकारे ॥ यदासर्वेप्रभिद्यन्ते हृदयस्येहग्रन्थयः । अथमर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम् ॥ कठोपनिषदि ॥

यद्गत्वाननिवर्त्तन्ते तद्धामपरमंमम । गीता ॥

महर्षि कपिल का मत ऊपर लिख चुके हैं महर्षि गौतम का भी यही सिद्धान्त है ॥

इन सब वाक्यों (प्रमाणों से) स्पष्ट सिद्ध है कि मुक्ति से लौटना नहीं है यही सब ऋषियों मुनियों का परम सिद्धान्त है । स्वामी दयानन्द ने मुक्ति से लौटना माना है जिस के लिये वे प्रमाण देते हैं—

ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्तिसर्वे ॥

यह मुण्डक उपनिषद् का वचन है—वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त हो के ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं ॥

(देखिये सत्यार्थप्रकाश द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २४०) यहां पर स्वामिदयानन्द को अपनी बात सिद्ध करने के लिये कि मुक्ति से लौटना है यह आवश्यक्ता हुई कि इस वाक्य का अर्थ पलट कर नया अर्थ पहिनाना चाहिए । जिस से अपना कहना सिद्ध हो जावे । वे अपने सिद्धान्तों के अनुसार शब्दों वा वाक्यों का अर्थ निकाला करते थे । न कि शब्दों वा वाक्यों से सिद्धान्त निकाला करते थे समस्त विद्वानों के विरुद्ध अर्थ करना इन का कर्त्तव्य था शोक ! महाशोक!! है कि आर्यसमाजियों का भी यही स्वभाव पड़ गया है कि—

नीम न मीठी होय, सींच गुड़ घी से।
जाको जौन स्वभाव, टरै नहिं जी से ॥

मुण्डक उपनिषद् में यह पूर्ण वाक्य इसप्रकार से लिखा है, (द्वितीय मुण्डक द्वितीय खंड वाक्य ६) ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्न्यासयोगाद्यतयःशुद्धसत्त्वाः।
तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकाले परामृताःपरिमुच्यन्तिसर्वे ॥

संसारिणां ये मरणकालास्ते परान्तास्तानपेक्ष्य मुमुक्षूणां संसारावसाने देहपरित्यागकालः परान्तकालस्तस्मिन् परान्तकाले (देखिये शांकरभाष्य)

इस वाक्य का भाषा में यह अर्थ है कि–वेदान्त से उत्पन्न हुए विज्ञान के अर्थ (परमात्मा) को निश्चय किया जिन्हों ने संन्यास (सर्व कर्म परित्याग रूपयोग से अर्थात् केवल ब्रह्मनिष्ठस्वरूपयोग) से शुद्ध हुआ है अन्तःकरण जिन का ऐसे जो यति (यतनशील) हैं वे सब चरमदेह के परित्याग कालमें परम अमृत होतेहुए ब्रह्मको प्राप्त होकर जन्म मरणसे छूटजाते हैं॥

स्वामि दयानन्द ने पूरा वाक्य तो देखा नहीं पक्षपात से ग्रसित एक टुकड़े का मनमाना अर्थ करदिया और उपनिषद् महर्षि व्यासादि को वेदविरोधी कहदिया। यहां पर स्वामि दयानन्द ने एक बड़ी एरिथमेटिक (गणिताङ्क) भी दिखलाई है और अन्त में लिखा है कि जो मुक्ति से कोई भी लौट कर जीव इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहिये। (देखिये सत्यार्थप्र० पृष्ठ २४०) इससे ज्ञात होता है कि स्वामी जी से किसी ने प्रश्न किया होगा कि यदि आप यह मानते हैं कि मुक्ति सदैव के लिये है (पहिले स्वामी जी मुक्ति नित्य मानते थे पीछे अनित्य मानने लगे देखिये सत्यार्थप्रकाशादि प्रथमावृत्ति) तो किसी दिन संसार नहीं रहेगा क्योंकि जीव अनन्त नहीं हैं तो स्वामी जी को स्मरण न रहा कि वेदशास्त्र और समस्त विद्वानों ने जीव अनन्त माने हैं शीघ्र उत्तर दिया मुक्ति नित्य नहीं है अपना पिण्ड प्रश्न कर्त्ता से किसी प्रकार छुड़ाया स्मरण रहे कि जीव अनन्त हैं नित्य मुक्ति संसार के उच्छेद का कारण नहीं हो सकती। आर्यसमाजी इन विषयों पर अवश्य विचार करें। वारम्वार अर्थ बदलना छोड़ देवें। यदि संसार में कोई पाप है तो अपने स्वार्थ के लिये अर्थ बदलते रहना भी महा पाप है। यह साधारण जनों को भ्रम में पड़ने का कारण होता है ॥

महर्षि गौतम मुक्ति के विषय में निम्नलिखित सूत्र लिखते हैं—

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ।

न्यायदर्शन अ० १ आ० सू० २–२२ ॥

जन्म के नाश से दुःख का नाश दुःख के नाश से अपवर्ग वा मुक्ति होती है वह (निःश्रेयस) अपवर्ग तत्त्वज्ञान से होता है जब जन्म का नाश है तो मुक्ति सदैव के लिये अवश्य ही होगी ॥

इसी प्रकार महा मुनि कणाद भी मुक्ति को नित्य मानते हैं। वे अपवर्ग के स्थान में निःश्रेयस मुक्ति का नाम रखते हैं . देखिये वैशेषिक दर्शन अ० १ आ० १ सू० ४—

धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥

भगवान् पतंजलि भी मुक्ति को नित्य मानते हैं । देखिये योगदर्शन कैवल्य पाद सूत्र ३४ ॥

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥

व्यासभाष्य–कृतभोगापवर्गाणां पुरुषार्थशून्यानां यः प्रतिप्रसवः कार्यकारणात्मनां गुणानां तत्कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्बुद्धिसत्वाऽनभिसंबन्धात् पुरुषस्य चितिशक्तिरेव केवला तस्याः सदा तथैवावस्थानं कैवल्यमिति ॥

भाषा में सारांश यह है कि–बुद्धि सत्त्व के संग फिर कभी भी संबन्ध न होने से जो पुरुष का निरंतर केवल चिति शक्ति रूप मात्र से अवस्थान रूप स्वरूपप्रतिष्ठा वास्तव रूप से अवस्थान वह कैवल्य जानना । इस से स्पष्ट सिद्ध है कि महर्षि पतंजलि मुक्ति को नित्य मानते हैं ॥

पाठक गणो ! हम ने उपनिषद् गीता और दर्शनों से यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि मुक्ति सदैव के लिए है अर्थात् नित्य है न कि अनित्य है ॥

स्वामि दयानन्द ने प्रथम मुक्ति नित्य मानी फिर किसी कारण से अनित्य मानने लगे और मुक्ति अनित्य सिद्ध करने के लिये खैंचातानी कर मंत्र

संहिता (हम इस बात को पीछे दर्शावेंगे) उपनिषद् दर्शनादि का अर्थ उलटा कर दिया वर्त्तमान काल में उन के अनुयायी भी प्रतिदिन इसी प्रयत्न में रहा करते हैं कि हठ से अपनी बात सिद्ध करें अर्थ बदलें इत्यादि । इस का केवल एक उदाहरण हम पं० आर्यमुनिकृत वेदान्तार्य भाष्य से देकर दिखाते हैं देखिये आर्यभाष्य पृष्ठ ४३७-४३८ ।

एवं वर्त्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते नच पुनरावर्त्तते ॥ छा० ८ । १५ । १ ॥

न च पुनरावर्त्तते फिर वह (आत्मावारेद्रष्टव्यः श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यः) इत्यादि प्रत्ययावृत्ति का आवर्त्तन नहीं करता क्योंकि प्रत्ययावृत्ति का साध्य जो ब्रह्मसाक्षात्कारथा वह उस को प्राप्त हो गया और मुक्त ऐश्वर्य को प्राप्त हो गया इस लिये उसे प्रत्ययावृत्ति की आवश्यकता नहीं ॥

आश्चर्य है स्वामि दयानंद ने अनावृत्तिः का अर्थ लिखा "फिर नहीं लौटना" मुक्ति से फिर नहीं लौटना) और यह अर्थ कर उपनिषद् और शारीरक वचनों को वेद विरुद्ध कहा और ऋग्वेद के दो मंत्र लिखकर और उनका अर्थ मन माना लगाकर मुक्ति अनित्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया । आर्य मुनि जी ने स्वामी दयानन्द जी के विरुद्ध (पुनरावर्त्तते) का अनावृत्ति अर्थ कर डाला और मोक्ष अनित्य सिद्ध कर दिया वाहवा ! विद्वान् लोग तो इस बात को समझ गये आर्यसमाजी इन अर्थों से अति ही प्रसन्न हुए सर्व साधारण भ्रमसागर में निमग्न हुए पाप भागी न जाने कौन हुए ? ।

ऋग्वेद के वे मन्त्र ये हैं जिन से स्वामी ने मुक्ति अनित्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है (स० प्र० पृ० २३९)

कस्यनूनंकतमस्यामृतानां मनामहेचारुदेवस्यनाम ।
कोनोमह्याअदितयेपुनर्दात् पितरंचदृशेयंमातरंच ॥
अग्नेर्नूनंप्रथमस्यामृतानां मनामहेचारुदेवस्यनाम ।
सनोमह्याअदितयेपुनर्दात् पितरंचदृशेयंमातरंच ॥
ऋग्वेद मं० १ । सू० २४ । मं० १-२ ॥

भाषा में उन ने यह अर्थ किया है कि हम लोग किस का नाम पवित्र जानें कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाश स्वरूप है हम को मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है ॥ १ ॥ हम इस स्वप्रकाश स्वरूप अनादि

सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हम को मुक्ति में आनंद भुगाकर पृथिवी में पुनः माता पिता के संबंध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है वहीं परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है॥२॥

हे पाठक गणो ! यहां स्वामी जी के अर्थ करनेमें कई बात विचारणीय हैं उन्हों ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये कैसे २ अधिक शब्द और वाक्याङ्ग अपने भाष्य में प्रविष्ट किये हैं—

नः का अर्थ हम को हमारे लिये हमारा है वहां आपने नः हम लोग (मोक्ष प्राप्त जीवों को) (नः प्राप्तमोक्षानप्यस्मान्) (मोक्ष सुखभोगानंतरं) (मुक्ति का सुख भुगाकर) फिर दूसरी श्रुति के अर्थ में "मुक्तानामपि जीवानां महाकल्पान्ते पुनःपापपुण्यतुल्यतया" (मोक्षपद्वी को पहुंचे हुवे जीवोंको भी महाकल्प के अन्तमें फिर पाप पुण्य की तुल्यता से) ये पाठ अधिक घुसेड़ दिये। मूल श्रुतिमें ऐसे कोई भी शब्द नहीं हैं। जिस से प्रार्थना करने वाले का मुक्त जीव होना सिद्ध होवे दोनों श्रुतियों के शब्दोंसे केवल यह अर्थ निकलताहै कि—

हम लोग निश्चय कर अमृत देवतों के मध्य में किस देवता के सुन्दर नाम को मानें (उच्चारण करें) कौन देवता हम को फिर भी बड़ी पृथिवी के लिये दे और हम माता पिता को देखें (संसार में हम फिर मनुष्यजन्म पावें) यह श्रुति पुनर्जन्म के विषय में है न कि मुक्तिकी अनित्यता के विषय में। हम लोग अमर देवताओं के मध्यमें निश्चय कर प्रथम अग्नि देवता के शुभ नाम को मानें (उच्चारण करें) वह हम को बड़ी पृथिवी के लिये देवे, और हम माता पिता को देखें। (संसार में फिर मनुष्य जन्म देवे)॥ किसी प्रकार यह अर्थ नहीं निकल सकता कि मुक्तजीव मुक्तिसे फिर लौटे॥

धन्य है स्वामि दयानन्द को और धन्य है उन के अनुयायियों को उन ने सायणादि भाष्य पूर्व ऋषि आचार्यकृत अपने सम्मुख रख लिये और एक दो शब्द वा वाक्य यहां प्रविष्ट कर अर्थ वहां बदल कर अपना सिद्धान्त दिखला दिया और प्रयोजन सिद्ध करलिया शब्द वा वाक्योंको तीव्र आज्ञा दिई कि देखो हमारे सिद्धान्त बिगड़ने न पावें हम तुम्हारा जो अर्थ करें वही ठीक है पूर्वले ऋषि मुनि आचार्य विद्वान् सब वेदविरोधी थे। अहह! क्या धींगा धींगी मचाई है आशा है कि देहली सभा के सभापति इस भ्रमोत्पादक व्यापार को स्वतः त्याग करेंगे और अपने मेम्बरों से त्याग कर वावेंगे। मुक्तजीवों को फिर नरक में पड़ने से तो अवश्य ही बचावेंगे। आगे उन की जो इच्छा होवे करें ॥

स्वामि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य में कई स्थानों में मुक्ति नित्य मानी है उन में से कुछ स्थल यहां प्रकट करते हैं पाठक श्रवण करें–

स्वामि दयानन्द कृत यजुर्वेदभाष्य १२–७९–

"अनित्यैःसाधनैर्नित्यंमोक्षसुखंखलुलब्धव्यम्"

(अनित्य साधनोंसे नित्य मोक्षके सुखको प्राप्त होवें) यजुर्वेदभाष्य १८-२९ "अमृताः स्वः अगन्म" जन्म मरण के दुःख से रहित हुए मोक्ष सुख को प्राप्त हों। यजुर्वेदभाष्य ३२ ९ "अमृतं धाम" नाश रहित मुक्ति के स्थान॥ इत्यादि। फिर भी देखिये वेद भाष्य भूमिका पृष्ठ ११२—

"सत्येनैव नित्यं मोक्षसुखं संसारसुखं प्राप्य पुनस्तस्मान्नैव कदापि च्युतिर्भवति।

सत्य ही से मनुष्य को व्यवहार और मुक्ति का उत्तम सुख मिलता है जिस से छुट के वे दुःख में कभी नहीं गिरते॥ सत्य धर्म विचार पृ० २५

सर्वज्ञस्येश्वरस्य सर्वानन्दस्य प्राप्त्या जन्ममरणादि सर्वदुःखनिवृत्तिरीश्वरानन्देन सह सदैवावस्थितिर्मुक्तिः।

जन्म मरणादि दुःख सागर में नहीं गिरना मुक्ति है (मुक्ति नित्य है) पहिले मुक्ति नित्य मानते थे फिर स्वामी जी अनित्य मानने लगे॥ सारांश यह है कि मन्त्र संहिता उपनिषद् दर्शनादि में मुक्ति नित्य है मुक्ति से लौटना कहीं नहीं लिखा है। समस्त विद्वानों का यही मत है कि मुक्ति नित्य है और वह ज्ञान से प्राप्त होती है (ज्ञानादृते मुक्तिन भवति) कर्म वा उपासना ज्ञान प्राप्तिमें सहायक होते हैं षट् सम्पत्ति (शमदमश्रद्धासमाधान उपरति और तितिक्षा) और साधन चतुष्टय (विवेक वैराग्य षट्सम्पत्ति और मुमुक्षा) मुक्ति के द्वारहैं। योग विना जो ज्ञान बतावै, विना ताल से गावै। कहै घाघ यह तीनों भकुआ, काम किये पछितावै॥

जैसे विना ताल और स्वर के गाना नहीं हो सकता वैसे ही विना कर्म वा उपासना के ज्ञान नहीं हो सकता. और वैदिक कर्मोपासना से हृदय शुद्ध होकर ज्ञान प्राप्त होता और ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त होती है अन्त में (असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय)प्रार्थनाकर इस विषय को समाप्त करते हैं॥ शुभम्भवतु॥ आपका कृपाकांक्षी

विहारीलाल बी० ए० शास्त्री, गंजीपुरा, जबलपुर सी० पी०

वन्दे मातरम् ।

पाठक गण ! यह जो वाक्य आप लोग ऊपर देखते हैं। यह वाक्य वर्त्तमान काल में भारत वर्ष के पूर्व भाग (बंगाल) से ध्वनित होकर भारत के सब भागों के आकाश मण्डल में इस की ध्वनि पहुंच चुकी है । परन्तु प्रत्येक भारतवासी के मुख से यह ध्वनि प्रति दिन सहस्त्रों वार एक ही साथ निकलने लगे तो कुछ भी सन्देह नहीं कि भारत वासियों के अन्तःकरण शुद्ध होकर भारत वर्ष के सुधार वा कल्याण का अङ्कुर इसी वाक्य का वायु लगने से हरा भरा हो सकता है। सनातन धर्मी हिन्दु लोग तो इस वाक्य का अर्थ अनेक प्रकार से ठीक मानते हुए निर्विकल्प इस का मान्य करेंगे। क्योंकि जगज्जननी महामाया परमात्मा की शक्ति अनेक असंख्य रूपों से चराचर संसार के रोम २ में व्यापक है। और वह सब रूपों से विद्यमान होने पर भी हमारी माता ही कही मानी जावेगी। सनातन धर्म के अनुसार विष्णु भगवान् के अनेक अवतार दुष्टों के विनाशार्थ और सज्जन भक्तों की रक्षा के लिये सदा से होते आये हैं। विष्णु भगवान् भक्त वत्सल हैं। इस से कभी २ एक २ भक्त के उद्धारार्थ भी प्रकट होते हैं। शंकर भगवान् भी वेदविरुद्ध नास्तिकादि मतों के विध्वंसनार्थ और वेद मर्यादा के स्थापनार्थ बीच २ प्रकट हुआ करते हैं। इसी प्रकार अन्य देवता भी भिन्न २ अनेक प्रयोजनार्थ यथाऽवसर प्रकट हो २ कर अपना २ काम कर २ स्वर्ग को प्रस्थान किया करते हैं। यह चाल सनातन काल से निरन्तर चली आती है।

परन्तु सब देवताओं की समुदित शक्ति भगवती जगन्माता जब २ प्रकट होती हैं तब २ आसुरी प्रबल शक्ति को विध्वंस करने के लिये ही प्रकट होती हैं। यह बात मार्कण्डेय पुराण के इतिहास से सम्यक् सिद्ध है। और भगवती माता ने प्रतिज्ञा भी की है कि—

इत्थंयदायदाबाधा दानवोत्थाभविष्यति ।
तदातदाऽवतीर्याऽहं करिष्येरिपुसंक्षयम् ॥

जब २ आसुरी माया के द्वारा दैवी दल को इसी प्रकार बाधा पहुंचेगी तब २ मैं अवतार लेकर वैरियों का विध्वंस करूंगी । इस वर्त्तमान काल में ब्रिटिश गवर्नमेण्ठ का राज है। इस राज्य में शस्त्रों के द्वारा कोई किसी को

महा कष्ट नहीं पहुंचा सकता इसी कारण शस्त्रों द्वारा शत्रुओं का निवारण करके दैवी दल की रक्षा करने का समय अब नहीं है। किन्तु सम्प्रति भारत वर्ष को दरिद्रता रूपी आसुरी अलक्ष्मी दिन २ घेरती जाती है। अब से पूर्वकाल में ८१ सेर से कम घी का भाव कभी सुनने में नहीं आया था। पर अब सुना है कि आगरे के भावी जल से में ८॥= ढाई पाव घी बेंचने का ठेका एक अंग्रेज साहब ने लिया है। गौ आदि पशुओं की हिंसा दिन दिन ऐसी अधिक बढ़ती जाती है कि जिस से भविष्यत् के लिये घी दूध मिलना दुर्लभ हो जायगा। सुन गया है कि आगरे में एक नया गोदाम पशु बध के लिये खोला गया है जिस से विलायतों में रहने वाले मांस भक्षियों के लिये १२०० मन मांस प्रति दिन रेलों द्वारा रवाना किया जाता है। और हम ने इटावे आदि में कई जगह स्वयं भी देखा है कि स्टेशनोंपर बड़े२ हण्डों में भर २ के मांस रवाना किया जाता है। यह मांस की रवानगी पहिले ऐसी नहीं होती थी कुछ काल से आरम्भ हुई है दिन २ तरक्की पर है। जब खाने वालों के लिये जितना पशु बध होता था उस से भी अधिक विदेशों को भेजने के लिये होने लगा तो क्या कुछ काल पीछे हिन्दुस्थान में गौ आदि पशुओं का अभाव न हो जायगा? तब घी दूध मिलना भी दुर्लभ अवश्य हो जायगा। घास भूसादि चारा पूरा २ मिलता जाय तो भी पशुओं को देहाती लोग न बेंचें वा बहुत कम बेंचें सो चारा भी रुई की सी गांठें बांध २ कर देशान्तरों को रवाना करदिया जाता है जिस से चारा न मिलने पर और रुपया लिये फिरते कसाइयों के नौकरों को देख २ कर देहाती लोग पशुओं को बेंचते जावें। तीसरे रुपया पैसा अन्नादि सभी वस्तुओं को देशान्तरों में खींच २ कर लेजाने की अनेक तरकीबें भारतवासियों को तङ्ग करने के लिये ऐसी की गयीं हैं वा प्रतिदिन ऐसी नई २ तरकीबें शोचीं तथा प्रचरित की जा रही हैं कि जिन के द्वारा भारतवर्ष का धर्म आचार विचार धन बल आदि सब स्वाहा होता जा रहा है। ऐसी तरकीबों को भारतवासियों में बहुत कम मनुष्य हैं जो शोचते विचारते हों। वास्तव में भारतवासी गाढ़ निद्रा में सोते हैं। इन को अपने सर्वस्वनाश होने की कुछ खबर नहीं है। परन्तु यदि पुत्र सोता ही पड़ा रहे जागे ही नहीं तब घर २ में माता ही सब से पहिले जगाती है। जब कि जगन्माता के सभी रूप हैं तब भारतवासियों को संप्रति जगाने के लिये

दिक्कतों को यथाशक्ति निवृत्त किया करे। कई २ ग्रामों की एक २ पञ्चायत सभा सब जिलों में नियत हो जो गरीबों वा सभा के उन विवादों का सत्य२ फैसला कर दिया करे कि जिन के दोनों फरीक पञ्चायत को मान लें तो प्रजा के बहुत दुःख मिट जावें। प्रयोजन यह कि उत २ जिले का प्रतिनिधि अपने जिले भर का हितैषी तथा मान्य होना चाहिये। ऐसा हो तो कांग्रेस सभा ठीक २ अन्वर्थ सार्वजनिक सभा हो सकेगी ॥ (शेष फिर)

रेलवे कम्पनी ॥

यद्यपि रेलवे कम्पनियों के मालिक तथा प्रधान कर्मचारी मैनेजर सुपरिन्टन्डन्ट आदि का विचार अच्छा है। प्रायः गाड़ियों में पाखाने भी बनते जाते हैं कि जिस से मुसाफिरों को किसी तरह की दिक्कतें न हों किन्तु यात्रियों को आराम मिले। पर यह सब होने पर भी रेलवे के छोटे २ कर्मचारी लोगों के द्वारा अब भी अनेक प्रकार का कष्ट मुसाफिरों को पहुंचता है। विशेष कर जब २ जहां २ मेला होते वा जिन तीर्थ स्थानों को अधिक मनुष्य जाते व आते हैं। तब वहां के बाबू टिकटकलट्टर तथा पुलिस दोनों की सम्मति से टिकट देने में देरी की जाती है मुसाफिर लोग भीड़ होने से घबराते हैं तब पुलिस धक्का दे २ कर हटाती है। जो २ कोई २ दो दो वा चार २ पैसा पुलिस को देता है उस २ को सहज में टिकट दिलाते देख कर अन्य मुसाफिर भी शोचते हैं कि टिकट मिल सकना कठिन है तब वे भी पैसा दे २ कर टिकट लेने लगते हैं। फिर टिकट मिल जाने पर भी गाढ़ी में भीड़ हुई तो मुसाफिर या तो भीतर घुसने ही नहीं पाते कह दिया जाता है कि गाड़ी में जगह नहीं है। अथवा घुस भी गये तो कोई गाड़ी में घुसने नहीं देता तब रेलवे कर्मचारियों को दो दो चार २ आना जिस२ ने दिये उस को बैठा दिया जिस ने कुछ नहीं दिया वे अनेक रह भी जाते हैं रेल छूट जाती है। रेलवे कर्मचारी मुसाफिरों (जो गरीब अजान हैं) को घास फूंस के समान समझते हैं। हमने ऐसी कार्यवाही अनेक वार अनेक जगह स्वयं देखी है। आशा है कि रेलवे के नेता लोग ऐसी बातों का कोई अच्छा प्रबन्ध शोच कर करेंगे।

समाचार ॥

इटावा—यहां संप्रति कई पेच घर अच्छे धड़ा धड़ चल रहे हैं। लकड़ी और मजूरों की तेजी अधिक है। यहां की सड़कें अधिक बिगड़ी हैं कहीं २

सड़कों में गढ़े हो रहे हैं। जिन सड़कों पर साहब लोग निकलते पैठते हैं वे ठीक २ सफाई से बनती और खराब होने से पहिले ही फिर २ बनजाती हैं पर जहां किसी हाकिम को आने जाने का कुछ काम नहीं पड़ता वे प्रायः खराब रहती हैं। धूलि बहुत उड़ती है। आशा है कि आगे को सड़कों का अच्छा प्रबन्ध हो क्योंकि इन कामों के लिये रैय्यत से अनेक प्रकार चुंगी आदि ली जाती है। जो २ रास्ता बहुत चलता है गाढ़ी बहुत निकलती हैं वहां २ की सड़कें फिर २ जलदी २ बननी चाहिये ॥

इटावा—के कलट्टर साहब बहुत अच्छे पुरुष हैं। जब से ये आये कई काम प्रशंसा के योग्य किये हैं। प्रजा के लोगों पर इतनी कृपा दृष्टि और रक्खें कि सवालखानी के लिये पूर्व के तुल्य कोई समय नियत करलें तो दरुखास्तें पेश करने वालों को दिक्कतें न झेलनी पड़ें ॥

यहां इटावा में एक „स्वदेशी–आन्दोलन" नाम की सभा गत विजय दशमी पर नियत हो चुकी है जिस में सनातन धर्मी, आर्यसमाजी और मुसलमानादि लोग सभी सम्मिलित हुए हैं। यद्यपि इस सभा के द्वारा अभी कोई उत्तम देशोपकारी काम नहीं हुआ है तथापि भविष्यत् में आशा है कि सभा आगे २ सचेत होगी। स्वदेशी चीनी तयार कराने का कारखाना खोलने का विचार यहां के कई लोगों का है। हम आशा करते हैं कि "स्वदेशी आन्दोलन" नाम की सभा प्रत्येक नगर तथा कस्बे में करने का उद्योग सर्व देश हितैषी तथा विशेष कर आर्यसमाजी महाशय करेंगे। यदि प्रत्येक नगर में इस नाम की सभा हो जाय और उन सब सभाओं के एक ही उद्देश रहें तथा इन्हीं सभाओं के द्वारा चुन२कर एक२ मनुष्य महती सार्वजनिक कांग्रेस सभा में प्रतिनिधि भेजा जाया करे तो बहुत अच्छा उन्नति का विचार वा प्रबन्ध होने की आशा दिन २ होगी। इटावा में एक "हितैषी कंपनी" नाम से नयी दुकान भी खुली है जिस में केवल स्वदेशी चीजों को देशान्तरों से मगा २ के बेंचने का काम होगा। ऐसी २ कम्पनी तथा दुकानें दिन२ सर्वत्र प्रत्येक नगरों में खुलनी चाहिये। इटावा में यद्यपि कई दुकानों पर विदेशी चीनी बिकना बन्द होकर देशी चीनी विकने लगी है तथापि अधिक दुकानों पर अब भी विदेशी चीनी ही बिकती है इस के लिये इटावा निवासियों को सुस्त न रहना चाहिये।

ग्राम-रूपधनी-पोस्ट-धुमरी-जि० एटा में श्री चौधरी गुलाबसिंह जी के पुत्र कुंवर गजराज सिंह जी ने ७। ८ महिने से नया बाजार लगवाना प्रारम्भ किया है। यह बाजार अच्छी तरह चलता है। जो कोई व्यापारी लोग स्वदेशी चीजों को कहीं देशान्तरों से बेंचने के लिये लाया करेंगे उन के माल को यथा योग्य लिया जायगा। एटा के जिले वालों तथा आस पास वालों को सुभीता विशेष होगा।

श्री आलाराम सागर जी ने ता० ३। ११। ०६ से १२ नवंबर तक दूल. सिंह सराय में गोरक्षादि विषयों पर व्याख्यान दिये। बाद ता० १४ नवंबर से ता० २१ तक उन्हीं विषयों पर रोसड़ा नगर में व्याख्यान दिये। बा० रामकृपालु सिंहादि गोरक्षा पर तन मन धन से उद्यत हुए हैं। अब श्री आलाराम सागर जी समस्तीपुर को गये हैं।

पं० ज्वालाप्रसाद जी बुकसेलर अलीगढ़ से लिखते हैं कि-दयानन्दीय आर्यसमाजी मत खण्डन के जो २ पुस्तक जिन २ महाशय के पास छपे तयार हों वे उक्त पते पर अलीगढ़ को लिखें उन सब की इकट्ठी अधिक २ पुस्तकें मगायी जावेंगी।

मेनेजर संस्कृत शाला सागर से लिखते हैं कि एक पंच काव्यादि पठित व मध्यम परीक्षा पास अध्यापक की आवश्यकता है। जिन की इच्छा हो वे उक्त पते पर लिखा पढ़ी करें। वेतन १५) वा २०) तक होगा॥

श्री सनातन धर्म प्रबोधनी सभा कोइटा का वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से निर्विघ्न समाप्त हुवा जिसमें व्याख्यान वाचस्पति श्रीमान् पण्डित दीनदयालु जी और पुष्कर निवासी पं० श्री धरजी के व्याख्यान कर्मोपासना, ज्ञान कांड, पर सुललित मधुर हुये। और पं० रामचन्द्रजी पं० हृषीकेशजी के भी व्याख्यान हुये मुलतानसे भजनमण्डली आयी जिसमें पं० मुलतानीचंद जी जेतली, पं० ठाकुर प्रसाद जी डाका, पं० रामचन्द जी, पं० रोशन लालजी, पं० पूर्णानन्द जी, श्रीयुत सेठ नारायणदास जी ने श्रोताओं को अपने नये भजनों से आनन्दित किया, पं० दीनदयालु जी के अपील करनेपर रतनचन्द कन्धारी न

१२००) रुपये की कीमत की जमीन धर्म सभा को प्रदान दी, और बहुत सा चन्दा हुवा सेठनारायणदास जी मुलतानी ने भी ३०) रुपया चन्दे के दिये, और एक सेठमोहनलाल जी ने २५०) रुपये प्रदान किया। सनातन धर्म की— जय उच्चारण करते हुये सभा समाप्त हुयी ॥

माघ २३ सं० ६२ सनातनधर्म सभा भदौड़ रियासत पटियाला में संस्कृत पाठशाला (ब्रह्मचर्याश्रम) खुला है जिस में ब्रह्मचारी १० विद्यार्थी ३१ जिन का आचार व्यवहार पुरातन रीति पर होता है। बाहर से आये विद्यार्थियों को यहां पुस्तक, वस्त्र, जगह, बड़े आदर से दिये जाते हैं। ब्रह्मचारियों के वास्ते १२ वर्ष विद्यार्थीयों के वास्ते १ वर्ष जरूरी रहना पड़ेगा सरकारी केद के मुताबिकपढ़ाई होती है। अष्टाध्याई वेद संहिता जरूर पढ़ाई जाती हैं। सज्जन पुरुष अपने बच्चों को भेजकर आश्रम को कृतार्थ करेंगे तो परम कृपा होगी ज्यो० बालकराम शर्म्मा।

वर की आवश्यकता

एक लड़की हमारे यतीमखाने में ११ वर्ष की गौड़ ब्राह्मण की है। जिस का विवाह करने की कमेटी ने तजवीज की है। उस का भी नोटिस है कि १३ या १५ वर्ष की उमर के गौड़ ब्राह्मण के लड़के की जरूरत है। लड़के का चाल चलन अच्छा हो। पढ़ा लिखा हो बीमारी कोई न हो। सरकारी नौकरी में हो या पढ़ता हो ॥

मुलक राज सब ओवरसियर राहों
जिला जालन्धर

पंजाब सनातन धर्म अनाथालय के लिये दो उपदेशकों की जरूरत है। तनुखा १०) से १५) रुपया मासिक लियाकत के मुताबिक मिलेगी। विदेश में अनाथ लड़के जमा करने का काम होगा और रुपया भी जमा करना होंगे। हेडक्वाटर लाहौर होगा। सफर खरच भी मिलेगा ॥ उर्दू पढ़े हुवे को तरजीह दी जावेगी ॥ अपनी अपनी दरखास्तें पास मुलकराज शर्मा सब ओवरसियर मुकाम हाल बटाला ज़ि० गुरदासपुर जल्द भेज देवें ॥

* व्याख्यानरत्नमाला *

इसमें पतिव्रताधर्म, आध्यात्मिक उन्नति, गोरक्षा, वैश्यधर्म, वर्ण व्यवस्था मृत्यु पश्चात् जीवन, सम्प्रदाय भेद क्यों, धैर्य्य, क्षमा, उपनयन, प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति साकारोपासना, अवतार, मूर्तिपूजा, श्राद्ध, पातिव्रतधर्म, सनातनधर्म की महिमा, ब्रह्मविद्या से सन्ध्या का सम्बन्ध, राम नाम की महिमा और अवतार, भक्ति, वैदिक धर्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है आदि विषयों पर (भारतधर्म) महा मण्डल के जन्मदाता पं० दीनदयालु जी शर्म्मा, अम्बिकादत्त जी व्यास, श्री आचार्य मधुसूदन गोस्वामी वृन्दावन, पं० गोविन्दराम जी शास्त्री, विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र, स्वामी हंसस्वरूप जी, पं० दुर्गादत्त पंत, पं० बलदेवप्रसाद जी मिश्र, पं० अमोलकराम बी० ए०, मि-सेसएनीबिसेंट आदिके वेद, स्मृति, शास्त्र, इतिहास, के प्रमाण सहित अद्भुत व्याख्यान हैं। हम अनुरोध पूर्वक कहते हैं कि प्रत्येक सनातनधर्म के प्रेमीको, तथा प्रत्येक हिन्दूको इस पुस्तककी एक २ प्रति अपने पास रखनी चाहिये, मूल्य १॥) रु० केवल धर्मप्रचार के लिये ६ पुस्तकें उपहार देंगे। १ वेदान्तसार २ महारामायण, ३ बुद्धिविनोद, ४ तांतियाभीलइतिहास, ५ दयानन्दहृदय, ६ पुनर्जन्मविचार।

* एक रुपये में ३५ पुस्तकें *

१ रामायणछन्दावली। छन्दों में सातो काण्ड रामायण की कथा संक्षेप से वर्णित है २ द्रौपदीउद्धार ३ प्रश्नोत्तरी वेदान्तों के कठिन प्रश्नों का उत्तम वर्णन है ४ वैरागविनोद। भगवद्भजन के दोहे हैं ५ ब्रह्मसार। समस्त पुराणों का आशय वर्णित है ६ ज्ञानचालीसा। ज्ञानरूपी अमृत वर्णित है, ७ गुणमालिका सटीक। अत्युत्तम कूट दोहा प्रत्येक देवताओं की स्तुति के टीका सहित हैं ८ वैद्यमनोत्सव। सम्पूर्ण रोगोंकी औषधि और नाड़ीका परिज्ञान वर्णित है ९ रमलसार। काष्ठ के पांसे के शुभाशुभ प्रश्नविचार लिखे हैं १० दोहावली, रत्नावली, । अच्छे २ उपदेश और कहावत हैं ११ मनोपदेशक भगवान् सच्चिदानन्द की भक्तादि का वर्णन है १२ मुहूर्तचन्द्रिका। सम्पूर्ण मुहूर्त्तादि वर्णन हैं १३ मनोरंजन। ग़ज़ल व ठुमरी भजन वगैरह हैं १४ दैवज्ञाभरण। जातकालंकार व पाराशरी के मत से ज्योतिष का संक्षेप वर्णन है १५ ज्ञानस्वरोदय। स्वरके भेदसे सब प्रकार के प्रश्नादि वर्णन हैं १६ शिवविवाह १७ दानलीला, नागलीला, १८ गंगालहरी, १९ कृष्णबाललीला, २० बहारप्रेमसुधा, २१ पाराशरी संस्कृत भा० टी० २२ भर्थरीचरित्र, २३ समासचक्र, २४ अमरकोश २५ धर्मसन्ताप, २६ अपराधभंजन स्तोत्र, २७ श्रीरामनखशिखावर्णन २८ योगबासिष्ठसार भा० टी० २९ अनेकार्थभाषा, ३० श्रीराधिकासुखमा ३१ ज्ञानगारीचतुर्दश, ३२ श्रीकृष्णजन्मोत्सव ३३ ब्रजरजमाहात्म्य, ३४ हनुमानबत्तीसी, ३५ श्रीविनयमाल।

पता मैनेजर रामचन्द्र और कम्पनी, दिन्दापुरा मुरादाबाद

ब्रा०स० का मूल्यप्राप्तिस्वीकार ता० २५ जौलाईसे ३ अक्टूवर तक

१५२४ पं० द्वारकाप्रसाद मखैना २।)
५३० बा० बासुदेवसहाय अजमेर २।)
१४२६ पं० कुन्नालाल सोजत २।)
१४२५ ला० लक्ष्मणदास सांगला २।)
७७७ मन्दिर श्री राधाकृष्ण धूमा २।)
५४२ बा० शिवशंकर रामचरणअजमेर २।)
७३६ रामलखन विद्यार्थी बहरायच १॥)
१४२७ पं० कन्हैयालाल जी सुठालिया २।)
६६६ बा० ठाकुरदास जी होशियारपुर २।)
७२५ पं० बाबूलाल आगरा २।)
६२१ पं० यमुनाप्रसाद भट्ट करपगाव २।)
२९६ पं० रामचन्द्रशर्मा अतरौली १॥)
८२० प्रेम वल्लभ बंशीधर चन्दौसी ३।)
३१० पं० ब्रह्मदत्त शर्मा मलगांव २।)
८७४ पं० लक्ष्मणाचार्य जी वृन्दावन २)
७७५ चुन्नीलाल जी दनकौर २।)
१४२८ बा० हरदयालु जी द्वारका २।)
२९५ पं० अनन्तराम जी शर्मा अल्मोड़ा १॥
४९६ पं० रामकुमार शर्मा आकोला १॥)
१४२९ बा० विश्वेश्वरदयालु मखैना २।)
५१ बा० लोतीराम जी रुड़की ५)
९१७ श्री बांकेबिहारी जी फीरोज़पुर २।)
१०५८ महन्त ब्रह्मकुशलोदासोन जी बरेली २।)
४८७ पं० जगन्नाथ जी अलवर २।)
१४३० रामचन्द्र शा० गोकुल २।)
१४३२ डा० मथुरादास नपटार २।)
९९१ पं० अयोध्याप्रसाद सफीदों २।)
५५० पं० कविशंकर जी लखना २)
१४३३ बा० प्रभूदयालु जी आजमगढ़ २।)
८९६ अयाचीमणिशंकर पाटण २।)
११०४ विष्णुरामधन सुखराम पाटण २।)
९८९ पं० भूदेव शर्मा सुरीर २≡)
११९६ पं० शिवकुमारमिश्र खोराडीह २।)
८९२ श्री मोहनलाल व्यास थावला ५)
१००० पं० राधाकृष्ण पटरिया नरसिंहपुर २।)
१४१४ आयाराम लाहौर २।)
२३२ पं० बासुदेव हुवारह २।)
१४१३ पं० गिरवरसिंह हिंडोल. २।)
१०८५ ठा० रत्नसिंह महोली २।)
१०९१ श्री माधवकृष्ण देश मुख पूना २।)
१०३९ पं० सुन्दरलाल इटावा २।)
३०८ राजाप्रतापबहादुरसाहब कुड़वार ५)
१४३५ बा० रामस्वरूप दुबे मघाना २।)
८०१ पं० कान्ताप्रसाद अमरोहा २।)
१०७५ पं० रामधारी शर्मा नवलगढ़ २।)
१४३६ बा० शिवसिंह वर्मा खजुरहट २)
१०११ दयालजी घियालालजी इन्दौर २।)
६७५ पं० कृष्णसहाय पानीपत १॥)
१४३७ श्री नारायणदास नंदलाल जी लाहौर २)
१०८१ बा० भगवानदास जी पुवायां २।)
७६६ मेलाराम जी जलालपुर २।)
१४३८ पं० गिरवरधारीलाल हैदराबाद २।)
७८९ कुंवरमुन्नूसिंह बड़गवां ३)
१४३९ पं० नन्दलालमिश्र कोटद्वारा २।)
८५८ पं० रामस्वरूप देहली १॥)
९९५ पं० मुसद्दीलाल फैजाबाद २।)
४४९ पं० गणपतमिश्र बुरहानपुर २।)
८५३ गिरधरशास्त्री मुंगेर २।)
३०१ पं० ऋषिराम मुरादाबाद २।)
११६७ पं० तुलाराम जी बिसाऊ १॥)
११५४ मुरारजी मेघजी मुम्बई २।)

REGISTERD No. 212

श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

THE
BRAHMN SARVSWA

आर्य्यम्मन्यसदार्य्यकार्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशत्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता-ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्म्मस्यसंसिद्धये,
ब्रादिस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

भाग ४] मासिकपत्र [अंक ११ । १२

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
ब्रह्म-यन्त्रालय-इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥

संवत् १९६३ वि० नौम्बर । दिशम्बर सन् १९०६ ई०

विषयः-१-मङ्गलाचरण स्तुति प्रार्थना । २-स्मार्त्तधर्ममीमांसा ।
३-सनातनधर्म दीपक पु० समीक्षा । ४-दैवतमीमांसा । ५-आर्यसमाजी
मतसमीक्षा । ६-प्रेरित लेख ७-श्राद्धकृत्य मीमांसा । ८-होली का खेल ।
९-भैरवाष्टकम् । १०-पुलिसकाकर । ११-इटावा में हिंसा का प्रचार ।
१२-स्वदेशहितैषिणी कविता । १३-नीतिशास्त्र का व्याख्यान । १४
(समालोचना) ऋग्वेदभाष्यादि । १५-समाचार । १६-विज्ञापन ।
१७-सूचना ॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१–यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल सायज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है ॥

२–इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है ॥

३–अगला अंक पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछला अंक विना मूल्य फिर से भेजा जायगा। देर होने पर दुबारा अंक ≡) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४–राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा ॥

५–जो पहिला अंक नमूना का मंगावें वे ≡) के टिकट भेजें वा ।) का वी० पी० मगावें यदि वे ग्राहक होंगे तो उनको नियत मूल्य में ≡) मुजरा दिया जायगा।

६–मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंगरेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं।

७–कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें। अन्यथा अंक पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे ॥

८–जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उन को यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र विना दाम मिला करेगा।

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१–जो विज्ञापन ब्रा० स० में छपें वा बांटे जावें उनके सत्य मिथ्या होने के उत्तरदाता विज्ञापन वाले ही समझे जायंगे। ग्राहक शोच समझ के व्यवहार करें।

२–ब्रा० स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो ≡)॥ लैन के हिसाब से लिया जायगा। तीन मास तक ≡)। ६ मास तक ≡) एक वर्ष तक –)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा।

३–एक बार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा। १ पेज का तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा।

४–जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ्तर से पूछकर ब्रा० स० का क्रोड़पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये। बांटने के लिये जो विज्ञापन छपाये जावें, उन में कानून गवर्नमेण्ट के नियमानुसार समाचार आधे विज्ञापन में वा कुछ कम हिस्से में अवश्य होने चाहिये। स्मरण रहे कि जिस में ब्रा० स० का क्रोड़ पत्र मय तारीख़ नहीं तथा समाचार न छपे हों वह नहीं बांटा जायगा। ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में, और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा। रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

❁ब्राह्मणसर्वस्व❁

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ११-१२

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

मङ्गला-चरणम् ।

भवाशर्वौ मृडतं माऽभियातं भूतपती पशुपती नमो वाम् । प्रतिहितामायतां मा विस्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ११ । सू० २ ॥

अ०-पश्यन्ति जानन्तीति पशवो मनुष्यादयश्चरप्राणिनस्तेषां पती रक्षितारावधिष्ठातारौ च भूतानामचराणामपि पती रक्षितारौ तत्संबोधने हे पशुपती भूतपती भवाशर्वौ ! भवत्युत्पद्यते नानारूपेणेति भवः सृष्टिकर्त्ता, शृणाति हिनस्ति प्रलयं करोति शृणाति नाशयति दुःखमिति वा शर्वः । तत्सम्बोधने हे भवाशर्वौ नोऽस्मान्मृडतं सुखयतम् । नोऽस्मान् माऽभियातमस्मदुपरि क्रोधेनाभिगमनं मा कुरुतम्। प्रतिहितां प्रतिक्षिप्तामायतां विस्तृतां नाशिकां शक्तिमस्मदुपरि मा विस्राष्टं मा मुञ्चतम् । तथा नोऽस्माकं द्विपदः पुत्रकलत्रादीन् चतुष्पदो गवादींश्च मा हिंसिष्टं मा हिंस्तम् । एतदर्थं हे भवाशर्वौ वां युवाभ्यां नमः कुर्मः प्रह्वाः सन्तः स्तुतिं प्रार्थनां च कुर्मः। शर्व इत्यौणादिको वः प्रत्ययः । देवताद्वन्द्वेचेति पूर्वपदस्यात्त्वम् । मृडतमभियातमिति लोण्मध्यमद्विवचनक्रियापदे । विस्राष्टं हिंसिष्टमिति लुङो मध्यम-

द्विवचने,न माङ्योग इत्यडभावः । चतुर्थ्या द्विवचने युष्मदो वामादेशः ॥

भा०–रुद्रः संहारदेवस्तस्यैवात्र भवाशर्वपदाभ्यां ग्रहणं विज्ञेयम् । उत्पत्तिप्रलयौ च सदैव प्रत्यहमप्यवयवानां भवतः । विशेषेण मरणाद्भीतैरस्माभिः संहारदेवो रुद्रएवोपास्यः । मरणभयाद्रक्षको निर्वाणमोक्षदाता च विशेषेण शिवएवेति महामृत्युञ्जयमन्त्राशयेनाप्यवगम्यते ॥

भावार्थ-हे (पशुपती, भूतपती) चर अचर प्राणियों के रक्षक (भवाशर्वौ) उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले दोनों नाम रूप धारी शिव जी ! हम लोगों को मृत्यु भय से बचा के (मृडतम्) सुखी करो । (माऽभियातम्) क्रोध पूर्वक हम पर चढ़ाई मत करो (प्रतिहितामायताम्) मनुष्यों को नष्ट करने के लिये फेंकी हुई अपनी महामारी आदि विस्तृत शक्ति को (मा, विस्राष्टम्) हम पर मत छोड़ो और (नः) हमारे (द्विपदः) स्त्री पुत्रादि को तथा (चतुष्पदः) गौ आदि चार पग वालों को (मा,हिंसिष्टम्) मत मारो । इसके लिये हे भव तथा शर्व रूप देवो ! हम लोग (वाम्) नमस्कार प्रणाम करते और स्तुति प्रार्थना करते हैं कि हम पर कृपा करो रक्षा करो ॥

भा०—संहार करनेवाले देवता रुद्र हैं उन्हीं का ग्रहण यहां भव और शर्व पदों के द्वारा जानो । वैदिक सिद्धान्त में एक२ देवता के सामान्य विशेष जितने नाम हैं उतने ही उसके रूप भी मानकर वे सब नाम रूपों वाले पृथक्२ देवता माने जाते हैं । इसी रीति से वेदोक्त मुख्य तीन देवताओं के ही अवान्तर भेद असंख्य देवता हो जाते हैं । जैसे सविता, सूर्य, आदित्य ये भिन्न२ देवता माने जाते हैं वैसे ही शिवजी के नाम रूप भेद से भव, शर्व दोनों भिन्न देवता हैं इसी कारण द्विवचन संघटित होता है । अनेक प्राणियों का जन्म–उत्पत्ति और मरणरूप प्रलय प्रति दिन सदा ही होता है । विशेष कर मरने से डरते हुए हम लोगों को संहार के अधिष्ठाता रुद्र देवता की उपासना करनी चाहिये । मरण भय से बचाने और निर्वाण मोक्ष के देने वाले विशेषकर शिवजी हैं यही अभिप्राय महामृत्युञ्जय (त्र्यम्बकं०) मन्त्र से भी जाना जाता है ॥

स्मार्त्तधर्म-मीमांसा अं० १० पृ० ४४२ से आगे

समाधान-मनु० अ० ४ का १२३ वां श्लोक विधि वाक्य है कि जहां साम वेद की गानध्वनि होती हो वहां ऋग्वेद यजुर्वेद को न पढ़े किन्तु अनध्याय रखना चाहिये। क्योंकि सामगान की उत्कृष्ट ध्वनि में ऋग्यजु का उच्चारण दब जायगा। इस विधि वाक्य के लिये मनु जी ने जो अर्थवाद लिखा है उसका भी यही मतलब है कि अत्यन्त उच्च स्वर सम्बन्धिनी अशुद्धि यहां लेनी है। किन्तु वेद के उच्चारण रूप स्वर में मल मूत्रादि कीसी घृणित अशुद्धि का प्रसंग किसी प्रकार संघटित होही नहीं सकता। द्वितीय सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो जब सामवेद के देवता पितर हैं। और पितरों के लिये मनुजी का लेख अ० ३ में यह है कि-

अक्रोधनाःशौचपराः पितरःपूर्वदेवताः। पितृभ्यो देव मानवाः। त्रीणिचात्रप्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्त्वराम्।

अर्थ-पितर लोग क्रोध रहित अति शुद्ध रहनेवाले होते हैं। पितरों से ही देवता और मनुष्य उत्पन्न हुए इस कारण पितर पहिले देवता अर्थात् देवों से भी उत्तम हैं क्योंकि पुत्रों की अपेक्षा पिता बड़ा और श्रेष्ठ माना ही जाता है। इसी कारण पितरों के श्राद्ध में अत्यंत शुद्धि, क्रोध का त्याग और धैर्य करे। जो अत्यन्त शुद्धि रखनेवाले पितर हैं उनके सम्बन्धी श्राद्धकर्म में थोड़ी भी अशुद्धि हुई तो उस श्राद्ध को पितर लोग कदापि स्वीकार (मंजूर) न करेंगे। पाठक गण! इस ऊपर के लेख से जान पड़ता है कि पितर लोग अत्यन्त शुद्ध हैं। यद्यपि देवता भी मनुष्यादि से अत्यन्त शुद्ध हैं तथापि पितर लोग देवतों से भी अधिक स्वाभाविक पवित्र हैं। और सामवेद के देवता भी वेही पितर हैं तब जिस सामवेद के देवता अत्यन्त शुद्ध पितर हैं। जो (वेदानां सामवेदोऽस्मि) विष्णु भगवान् का ही एक रूप है। और "पितृणामर्यमा चास्मि" और पितरों में भी भगवान् अर्यमारूप हैं तब ऐसी दशा में ऋग्वेद यजुर्वेद से भी सामवेद अधिक शुद्ध होना आवश्यक है। और मनुजी ने उस सामवेद की ध्वनि अशुचि कही इससे और भी शंका बढ़ गयी। इस का समाधान-

नास्त्यधिकः शुचिर्ध्वनिरस्मादन्यः सोऽशुचिर्ध्वनिः।

जिससे अधिक शुद्ध ध्वनि अन्य किसी की न हो वह सबसे अधिक शुद्ध ध्वनि सामवेद की है। यहां अनुत्तम शब्द के तुल्य बहुव्रीहि समास मानना चाहिये किन्तु (न शुचिरशुचिः) ऐसा नञ् तत्पुरुष समास यहां नहीं है।

जैसे पितर अत्यन्त शुद्ध हैं वैसे उनका सम्बन्धी सामवेद भी अति पवित्र है। सामवेद अत्यन्त पवित्र होने से ही भगवान् का भी स्वरूप है। इससे यह भी न समझ लेना कि ऋग्वेद यजुर्वेद तथा उनके देवता शुद्ध नहीं वा अशुद्ध हैं किन्तु ये सभी शुद्ध वा अति पवित्र ही हैं परन्तु पितर तथा सामवेद की ध्वनि उन पवित्रों भी अति पवित्र है। इसी लिये सामवेद की अति पवित्र ध्वनि के साथ ऋग्वेद यजुर्वेद की ध्वनि का तिरोभाव हो जायगा इससे उन दोनों वेदों को उस मौके पर न पढ़े। यह मनु जी का सूक्ष्म अभिप्राय है। परन्तु यह अति पवित्रता दिव्य पितरों के साथ है और वेही पितर सामवेद के देवता माने जावेंगे। और मानुष पितरों के साथ कुछ सापेक्ष अपवित्रता भी मानी जावे तो उसका यहां कुछ ताल्लुक ही नहीं है। इस प्रकार मनुजी का अभिप्राय बहुत अच्छा सर्वथा निर्दोष है। उस में व्यर्थ का कुतर्क उठाना गोस्वामी की भूल है॥

आगे गोस्वामी-मनु०अ०४श्लोक१७६ में लिखा है-

धर्मंचाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेवच ॥

अर्थ—जिसके परिणाम में दुःख हो और जो लोक में निन्द्य हो, उस धर्म को भी छोड़ देना चाहिये।

कहीं धर्म से भी दुःख होता है?। जो लोक में निन्द्य है उसे धर्म काहे को कहना चाहिये?। सिद्धान्त तो यह है कि चाहे समस्त जगत् निन्दा करे पर धर्म को न छोड़े। मनुस्मृति कहती है कि लोक निन्दा करें तो धर्म को छोड़ दो धन्य स्मृति और धन्य स्मार्त्तधर्म!।

समाधान—ये गोस्वामी वैष्णव सम्प्रदायी होने से आर्यसमाजियों के तुल्य मनमाने विचारों को तो धर्म मान नहीं सकते। तब इन लोगों को धर्मका कोई लक्षण अवश्य मानने पड़ेगा। यदि गोस्वामी वेदमतानुयायी बनना चाहें तो इन को (चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः) मान ने पड़ेगा। इस दशा में यह सिद्ध होगा कि जो कुछ वेद में कहागया वही धर्म है। वेद में जो कुछ कहा है वह ईश्वरीय आज्ञा अटल है। वैसी आज्ञा क्यों है? उस में ऐसा दखल देने का मनुष्य का काम नहीं। तब वेद में जो कुछ लिखा गया है उस का सब समय में एकसा प्रचार हो नहीं सकता। क्योंकि मनुष्य की शक्तियां सदा एकसी नहीं रहती हैं किन्तु सत्युग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग में क्रमशः

शक्ति घटती हैं। उदाहरण के लिये लेलीजिये कि वेद मन्त्र का आशय लेकर कल्पसूत्रकारों ने विधान किया है कि (अथास्यै दक्षिणांसमधि हृदय मालभते ममव्रतेतइति) दहिने कंधे के ऊपर से हाथ लेजाकर बधू के हृदय का वर स्पर्श करता हुआ (ममव्रतेतेहृदयं दधामि) मन्त्र पढ़े । यहां वेद का आशय शुद्ध है । और जब धर्म के सामने काम दबा हुआ था तब स्पष्ट रूप से स्त्री के हृदय का स्पर्श अनेक पुरुषों के सामने करने पर किसी को भी संकोच लज्जा कुछ नहीं होती थी पर आज कल जब कामासक्ति ने धर्म की भावना को सर्वथा दबा रक्खा है । सभी स्त्री पुरुषों के हृदय में प्रचण्ड रूप से कामाग्नि प्रज्वलित हो रहा है। ऐसे समय में उक्त मन्त्र से विवाह की वेदी पर यदि स्पष्टरूप से स्त्री के हृदय का स्पर्श कराया जाय तो जब वेद का शुद्ध अभिप्राय समझने वाले पुरोहित जी भी नहीं दीखते। तब इस दशा में लोग लुगायीं सब यही हल्ला करें कि (छाती पकड़वाई गई) और वर युवा हो तो उसमें सम्प्रति यह शक्ति नहीं हो सकती कि वह काम की भावना को छोड़ के हृदय स्पर्श करसके तथा यह भी भय है कि कामान्ध हो कर निर्लज्जता करने को तत्पर हो जाय । इसलिये सम्प्रति स्पष्टरूप से स्त्री के हृदय का स्पर्श प्रायः वे भी लोग नहीं कराते जो प० पद्धति का मतलब ठीक २ समझते हैं । क्योंकि यह हृदय का स्पर्श कराना यद्यपि धर्म है तथापि लोक विक्रुष्ट होने से संप्रति कर्त्तव्य नहीं है। इसी से कराया भी नहीं जाता किन्तु कन्धे का स्पर्श कराके पं० लोग मन्त्र पढ़ देते हैं । इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलेंगे जो लोकविक्रुष्ट होने से कोई भी बुद्धिमान् उस दशा में उन को कर्त्तव्य नहीं कहेगा । परन्तु जिस सत्ययुगादि काल में धर्म की भावना से काम दबजाया करता है तब सभी लोग विना लज्जा संकोच के विवाह के समय स्त्री के हृदय का स्पर्श ठीक मानेंगे । और वेदोक्त होने से वह धर्म तो सभी काल में रहेगा ।

अब रहा असुखोदर्क नाम परिणाम में जिसका फल अच्छा न हो । सो भी सब मनुष्य मात्र को मानने पड़ेगा कि (नहिसत्यात्परोधर्मः) सत्य बोलना सर्वोपरि धर्म है । चाहें यों कहो कि सत्य बोलने को सभी मज़हबों वाले मनुष्य अच्छा कहते मानते हैं परन्तु अपवाद रूप में अनेक मौके ऐसे हो सकते हैं जहां सत्य बोलने का परिणाम बुरा निकले वहां सत्य नहीं बोलना चाहिये इस में भी सब बुद्धिमानों की एक ही राय होगी । जैसे किसी निरपराध मनुष्य को छिपा लेना और दुष्ट हत्यारे वधिक को मिथ्या कह कर वञ्चित कर देना । यदि वहां सत्य वर्त्ताव करे तो उसी सत्य से हत्या के दोष में

भागी होगा। और हत्या का परिणाम वास्तव में बुरा है। इस के लिये इतिहास को गोस्वामी मानते हों तो राजा भोज का इतिहास स्मरण करलें कि जब भोज के चाचा ने भोज बालक का शिर काट लाने की आज्ञा मन्त्री को दीथी तब मन्त्री ने कैसी चातुरी से भोज को छिपा रक्खा और उसी प्रकार का शिर लाके भोज के चाचा को मिथ्या बञ्चित किया। क्या इस इतिहास का स्मरण करके मन्त्री के मिथ्या व्यवहार को कोई भी मनुष्य बुरा कह सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। किन्तु उस के मिथ्या की सभी प्रशंसा करते हैं। क्योंकि मिथ्याके द्वारा भोजराज को हत्या से बचाया। और सत्य धर्म करता तो भोज का ही शिर काटकर लाता जिसका परिणाम बहुत बुरा था। बस जब सत्यादि धर्म सर्वानुमत अच्छा होने पर भी ऐसे अवसरों में सभी विचार शीलों की राय से त्याज्य होगा तब वही बात मनुजी ने भी लिखी है जिसको संकुचित विचारवाले अल्पदर्शी गोस्वामी जैसे मनुष्य दोष लगाने को तयार हैं!। विद्वान् लोग यह भी मानते हैं कि सत्य बोलना सर्वोपरि धर्म है यह उत्सर्ग रूप कथन है। और किसी अवसर में सत्य का परिणाम अच्छा न हो यह उसका अपवाद है। "सत्य से परे कोई धर्म नहीं,, इस उत्सर्ग की सर्वत्र व्याप्ति है केवल अपवादांश को छोड़ के। अपवादांश में उत्सर्ग वाक्य की प्रवृत्ति न होने से उस के उत्सर्गत्व में कुछ बाधा नहीं पहुंचती। उत्सर्गापवाद दोनों अपने२ अंश में चरितार्थ होने से सार्थक हैं। अर्थात् अपवाद में भी उत्सर्ग का सामान्यांश व्यापक अवश्य रहेगा। इसी लिये अपवाद गत सत्य भी धर्मपद वाच्य रहेगा परन्तु वहां धर्मत्व बुद्धि से उसका अनुष्ठान नहीं किया जाना चाहिये यही मनु जी का गंभीर आशय है।

अब हम अपने गोस्वामी जी से पूछते हैं कि हे गोस्वामिन्! आप ही बतलाइये, कि आपके मत में धर्म का क्या लक्षण है?। यदि अपने सम्प्रदायी ग्रन्थो में लिखे कर्त्तव्य को धर्म मानोगे तब भी ऊपर लिखा उत्सर्गापवाद का अटल नियम मानने पड़ेगा। कलकत्ते से डाक गाढ़ी अमुक समय छूटकर इतने२ बजकर इतने२ मिनटों पर उन२ स्टेशनों पर पहुंचने का उत्सर्गरूप नियम है और प्रायः वैसा ही होता है इसी में वह उत्सर्ग नियम सार्थक भी रहता ही है। परन्तु कभी२ खास कारणों से उत्सर्ग के सामान्य नियमों से विरुद्ध भी गाढ़ीलेटहोती है। इसमें हम भी सहमत हैं कि वास्तव में जिसका परिणाम अच्छा हो ऐसे धर्म को सब जगत् भर के निन्दा करने पर भी नहीं त्या-

गना चाहिये। परन्तु पाठक लोग यह भी ध्यान रक्खें कि धर्म की अनेक कक्षः हैं। जो धर्म प्रधान कक्षा के हैं कि जिन के सेवन से मनुष्य का वास्तव में कल्याण ही होता है वे धर्म ऐसे निन्द्य कभी नहीं होते किन्तु अवयवरूप वा छोटे२ धर्म कभी२ लोक विकृष्ट होजाते हैं उन के न करने से मनुष्य की विशेष हानि नहीं होती। गोस्वामी-अभी-और भी देखिये-

योयस्यमांसमश्नाति सतन्मांसादउच्यते।
मत्स्यादःसर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ॥

मनु० अ० ५ श्लोक १६-अर्थ-जो जिस का मांस खाता है वह उस का मांसाद कहा जाता है। मत्स्य खाने वाला सर्वमांसाद (सब का मांस खाने वाला) कहा जाता है इस से मत्स्य न खाना चाहिये। यहां तो मत्स्यों का इतना बड़ा निषेध है और अध्याय ४ के २५० श्लोक में—

धानामत्स्यान्पयोमांसं शाकंचैवननिर्णुदेत् ॥

अर्थ--धान, मत्स्य, पय, मांस, शाक, इन का निषध न करे, जो दे उसी से ले लेवे। वाह ! मत्स्य और मांस का यह माहात्म्य कि किसी को मना न करे जो दे उस से लेले, जगन्नाथ जी का भात ठहरा।

नियुक्तस्तुयथान्यायं योमांसंनात्तिमानवः।
सप्रेत्यपशुतांयाति संभवानेकविंशतिम् ॥

मनु० अ० ५ श्लो० ३५-अर्थ-श्राद्ध वा मधुपर्क में नियक्त जो पुरुष मांस नहीं खाता है वह इक्कीश जन्म तक पशु होता है।

धन्य ! 'मांस खाना' ऐसा धर्म ठहरा कि न खाने से इक्कीश जन्म तक पशु होता है ! यह तो सन्ध्या वन्दन से भी बड़ा धर्म ठहरा ?। क्योंकि सन्ध्या न करने से तो शूद्र के समान ही होता है परन्तु मांस न खाने से तो २१ जन्म तक पशु होना होगा। कुआ में जाय वह धर्म जिस में मांस न खाकर पशु होना पड़े ! इन्ही बातों से तो स्मार्त्त महाशय वैष्णवों से नाराज, वैष्णव कदापि मांस का स्पर्श न करेंगे। स्मार्त्त विना मांस खाये २१ जन्म नर्क में पड़ेंगे अब कहिये वह कथन कि 'शाक्त धर्म ने' ही स्मार्त्त कलेवर पलटा है इस मांस भक्षण की महिमा ही से सिद्ध होता है कि नहीं ? ॥

समाधान-मनुस्मृति के सांत भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण के अन्तिम भाग पर दृष्टि देने शोचने से स्पष्ट मालूम होता है कि महर्षि मनु जी का सिद्धान्त

मांस भक्षण के निषेध परक ही है किन्तु लेश मात्र भी मांस भक्षण का विधान करना इष्ट नहीं है। ऐसी दशा में जिन २ गो स्वामी आदि को मनु में मांस भक्षण के विधान की शंका होती है उस में यातो उन लोगों की समझ का दोष है कि पूर्वापर शास्त्र की संगति लगाना नहीं जानते। अथवा इतनी विद्या बुद्धि ही प्राप्त नहीं हुई जिस से धर्म शास्त्र के तत्त्व को समझ सकते। सो इन दो बातों में से यह पिछला ही अंश हम को ठीक मालूम होता है। क्योंकि मनु० अ० ४। २५० (धाना मत्स्यान्॰) इत्यादि अर्द्ध श्लोक को अशुद्ध लिखा और वह छापे आदि की भूल नहीं है। क्योंकि स्त्रीलिङ्ग धाना शब्द को गो स्वामी ने पुंल्लिग लिखा और उस का सर्वशास्त्र विरुद्ध 'धान' अर्थ किया इस से तथा नरक शब्द को 'नर्क' लिखने से गो स्वामी का हाल ज्ञात हो गया कि गोस्वामी को शब्द बोध भी ठीक नहीं है। यदि (धाना भ्रष्टयवे स्त्रियाम्) इस अमर कोश के वाक्य को भी गो स्वामी ने सुना जाना होता तो जान लेते कि धाना शब्द नित्य बहु वचन तथा स्त्री लिङ्ग भूंजे जौ का नाम है। और ऐसा ज्ञात होता तो धाना को पुंल्लिङ्ग लिखकर 'धान' अर्थ कदापि नहीं करते। जब कि गोस्वामी इतने अनभिज्ञ हैं तभी तो उन पर यह कहावत लग जाती है कि—

ज्ञातंपितुश्चपाण्डित्यं टुड़ईनामदर्शनात्।

किसी विद्यार्थी ने कहा कि मेरा नाम टुड़ई है और मेरे पिता बड़े पण्डित हैं। तब उस पण्डित ने कहा कि तुम्हारे पिता की पण्डितायी तो हमने तुम्हारा टुड़ई नाम रखने से ही जानली। सो महाशयो! धाना पद का धान अर्थ करने से गोस्वामी की पण्डिताई भी जानली गई। जिन लोगों को इतना भी बोध नहीं वे मानव धर्मशास्त्र जैसे गम्भीर विचार के महामान्य ग्रन्थ पर उछल कूद मचावें तो ऊंट पै टांग उठा के फलांग मारने के तुल्य जानो। जैसे फलांग मारके प्रायः लोग खड़े घोड़े पर चढ़ते हैं वैसे ही किसी विचार शून्य मनुष्य ने खड़े हुए ऊंट पर चढ़ने को फलांग मारी। इस कारण बीच से गिर गया तभी से "ऊटपटांग" यह कहावत चली प्रयोजन यह कि गोस्वामी का मनु० पर आक्षेप करना ऊंट पर फलांग मारने के तुल्य है। अस्तु—

(धानामत्स्या०) इत्यादि आधे वा पूरे श्लोक में जब ऐसा कोई भी शब्द नहीं जिसका यह अर्थ हो सके कि मांस मछली को भी खालेवे तब गोस्वामी को इतना न सूझा कि खाने के लिये कोई शब्द नहीं है। मांस तथा

मछली की हिंसा करने और खाने में पाप है। परन्तु लाये हुए को निषेध न करे तो पाप कुछ नहीं लग सकता है। अब रहा कि उस मांस मछली का क्या करे? तो उत्तर होगा कि किसी मांसाहारी मनुष्य वा कुत्तादि को देदेवे। अथवा अपने शूद्रादि सेवक भृत्यों को देदेवे कि जैसा मनु०अ० ४ श्लोक २५१ में लिखा है कि भृत्यादि की रक्षा के लिये स्वीकार कर लेवे। धर्मशास्त्रकार का अभिप्राय यह है कि जो कोई विना मांगे कुछ वस्तु किसी को देने के लिये लाता है उसके मन में श्रद्धा अवश्य होती है। उस श्रद्धा से लानेवाले के पदार्थ को स्वीकार न करे तो उसकी श्रद्धा का विघात और उसका कुछ अपमान होता है। और स्वीकार कर लेने में दोष कुछ नहीं किन्तु खाने में दोष अवश्य है सो खाने की आज्ञा नहीं दी किन्तु अन्यत्र मांस मछली खाने का निषेध विद्यमान है। वही निषेध यहां भी लग जायगा। तथा श्लोक (२५१) में यह भी कह दिया है कि (न तु तृप्येत्स्वयंततः) उन धाना आदि पदार्थों को स्वयं न खावे। इससे मनुजी का लेख सर्वथा निर्दोष है गो स्वामी का विचार सदोष है॥

अब रहा (नियुक्तस्तु यथान्यायं०) इत्यादि श्लोक सो उसका अभिप्राय यह है कि जिस अग्निष्टोमादि यज्ञ में मांस का उपयोग किया गया हो उस में मांस भक्षण से बचनेवाला मनुष्य लोभादि के कारण ऋत्विज् होना स्वीकार न करे और यदि स्वीकार करले तो मांस भक्षण में सामान्य तथा दोष होने पर भी वहां दोष न देखे। यदि वहां भी दोष देखेगा तो उसको अवश्य पाप लगेगा। इसका उदाहरण वा दृष्टान्त यह है कि यदि मनुष्य जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी विरक्त रहता हुआ योगाभ्यासादि द्वारा ईश्वर का आराधन करे तो बहुत अच्छा है। यही मनुष्य के लिये उत्तम कोटि का काम है। परन्तु ब्रह्मचारी रहना चाहता हुआ विवाह कदापि न करे। यदि वेद की रीति से विवाह (स्त्री का स्वीकार) कर ले तो ब्रह्मचारी रहने (स्त्री से संग न करने से वा स्त्री के संग में दोष देखने) से पाप अवश्य लगेगा। यद्यपि ब्रह्मचारी रहने की अपेक्षा स्त्री संग में दोष है तथापि स्त्री का विधिपूर्वक स्वीकार करलेने पर संग न करने में भी पाप है। ऐसी दशा के दोष भी सभी मनुष्यों को मानने पड़ेंगे। अब रहा यह कि वेद में ऐसे यज्ञ क्यों हैं कि जिन में पशु वध होता है तब उत्तर यह होगा कि वेद में सभी कक्षाओं के धर्म हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की अपेक्षा गृहाश्रम

भी तो सदोष है पर ब्रह्मचर्य के अधिकारी सब नहीं। गृहाश्रम में एक स्त्री का स्वीकार भी तो अन्य सामान्य स्त्रियों से पुरुष को निवृत्त करने के लिये होने से परिसंख्या विध्यन्तर्गत है किन्तु यह अभिप्राय वेद का कदापि नहीं है कि जो ब्रह्मचारी रह सकता है उस को भी विवाह करना ही चाहिये। इसी अभिप्राय से विधियज्ञों की अपेक्षा जप यज्ञ को दश गुणा अच्छा कहा गया है। श्रुति में भी जप यज्ञ की ही विशेष प्रशंसा है। इस से सिद्ध हुआ कि विधि यज्ञों में कही पशु हिंसा भी अन्य सब हिंसा और मांस भक्षण की निवृत्ति के लिये है किन्तु प्रवृत्ति के लिये नहीं है। जब मांस भक्षण की निवृत्ति में श्रुति स्मृति दोनों का तात्पर्य उक्त रीति से सिद्ध है तो गोस्वामी का दोष देना सर्वथा निरर्थक हुआ। २१ जन्म का लेख निन्दार्थवाद है किन्तु विधि वाक्य नहीं। गोस्वामी–और चलिये–

वेनोविनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैवपार्थिवः।
सुदासोयवनश्चैव सुमुखोनिमिरेवच॥
पृथुस्तुविनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेवच।
कुवेरश्चधनैश्वर्यं ब्राह्मण्यंचैवगाधिजः॥

मनु० अ० ७। ४१। ४२। इन श्लोकों से सिद्ध है कि इन वेन आदि से पीछे यह मनुस्मृति बनी है। और यह मनु की बनाई स्मृति होती तो स्वयं मनु यह कैसे लिखते कि "मनु ने विनय से राज्य पाया था" तथा अ० ९। ६६। ६७ में राजा वेन का मनु से पहिले होना और मनुस्मृति का पीछे होना सिद्ध है—

अयंद्विजैर्हिविद्वद्भिः पशुधर्मोविगर्हितः।
मनुष्याणामपिप्रोक्तो वेनेराज्यंप्रशासति॥
समहीमखिलांभुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा।
वर्णानांसंकरंचक्रे कामोपहतचेतनः॥

इन श्लोकों से राजा वेन का पहिले होना और अपने राज्य में विधवा विवाह का प्रचार करना मनुस्मृति से पहिले का सिद्ध होता है। तब मनु० अ० १ श्लोक ५७ में कहा विचार मिथ्या जान पड़ता है–

इदंशास्त्रंतुकृत्वाऽसौ मामेवस्वयमादितः ।
विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहंमुनीन् ॥

अर्थ–आदि में ब्रह्माजी ने यह शास्त्र बना कर विधि पूर्वक मुझे पढ़ाया और मैं ने मरीच्यादिक मुनियों को पढ़ाया। यदि सृष्टिके आरम्भ का शास्त्र हो तो ये सब कथायें जो सृष्टि के लाखों वर्ष पीछे हुई हैं उस समय कहां से संग्रह की गयीं ? इस से भी यह सिद्ध होता है कि यह मनुस्मृति वह नहीं है जो ब्रह्मा जी ने मनु को और मनु ने मरीच्यादिक मुनियों को पढ़ायी थी। दशम अध्याय में ५। ६। ७। ८। श्लोकों में वामदेव, भरद्वाज, और विश्वामित्र आदि ऋषियों की कथायें लिखी हैं। इस से भी इस ग्रन्थ की नवीनता सिद्ध होती है ॥

समाधान–गोस्वामी ने यदि वेदादि शास्त्रों का कुछ भी अभ्यास किया होता तो उनको मनुस्मृति के आधुनिक कहने का कदापि साहस न होता। वेद से पहिले कोई भी पुस्तक नहीं माना जाता है। क्योंकि–

वेदोनारायणःसाक्षात्स्वयंभूरितिविश्रुतः ।

वेद साक्षात् नारायण का ही स्वरूप है। इसीसे भगवद्गीता में भी लिखा है कि (वेदानां सामवेदोऽस्मि) वेदों में मैं सामवेदस्वरूप हूं। और सब विद्वानों की एक सम्मति से सिद्ध है कि मन्त्र ब्राह्मण उपनिषद् सभी वेद हैं। तब इन वेदों में भी तो बहुत पीछे हुए राजादि की सहस्रों कथायें विद्यमान हैं. (शौनको हवै पारिक्षितं जनमेजयं याजयाञ्चकार) यह भी एक श्रुति है। तब गोस्वामी को चाहिये था कि पहिले वेद को ही आधुनिक ठहराते। गौतमीय न्यायदर्शन अ० ४ आ०१ सू० ६२ पर महर्षि वात्स्यायन जी अपने न्याय भाष्य में लिखते हैं कि—

यएव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति ॥

जो महर्षि लोग मन्त्र ब्राह्मण रूप वेद के साक्षात् करने वाले (मन्त्रादि को साक्षात् जानने के कारण ही उन२ मन्त्रादि के वे२ ऋषि कहे माने जाते हैं) और अध्यापनादि द्वारा प्रचार कर्त्ता हुए हैं। वेही महर्षि लोग इतिहास पुराण और धर्मशास्त्रों के बनाने वाले हैं। तब जिन के द्रष्ट तथा

प्रोक्त होने पर वेद का प्रमाण मान्य है उन्हीं के निर्मित होने से धर्म शास्त्रादि का प्रमाण आस्तिक लोग मानते हैं। इसी कारण जिन २ लोगों के इतिहास वा वृत्तान्त धर्मशास्त्र और पुराणादि में लिखे हैं प्रायः वे सभी वेदों में भी विद्यमान हैं। तब यदि धर्मशास्त्रादि उन वृत्तान्तों के होने से अर्वाचीन हैं तो वेद भी पीछे से बने सिद्ध होंगे। और जब श्रुति, स्मृति, पुराण तीनोंके कर्त्ता वा प्रवर्त्तक एक ही हैं तब उनके विषय भी एकसे होने उचित ही हैं। इस दशा में गोस्वामी आदि कोई कहें कि तो वेद भी आधुनिक ठहर जाओ हमारी क्या हानि है ?। सो गोस्वामी ऐसा नहीं मान सकते क्योंकि श्रीमद्भागवत और भगवद्गीतादि जिन २ पुस्तकों को वे मानते होंगे उनसे भी जब सिद्ध है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी के मुख से वेद प्रकट हुआ तो सर्गारम्भ के साथ ही वेद का प्रकट होना निर्विकल्प गोस्वामी को मानने ही पड़ेगा। और जब वेद का अतिपुरातन होना उनको मानने पड़ा तो जो कुतर्क मनुस्मृति पर गोस्वामी करते हैं वही प्रश्न उन पर स्वयं सवार हो गया कि वेद में वैसे इतिहास क्यों हैं ?। यदि वेद में इतिहास हैं तो अर्वाचीन क्यों नहीं ?। यदि वेद को अर्वाचीन मानो तो क्या श्रीमद्भागवतादि का लेख मिथ्या कहोगे ?। अस्तु।

हम तो श्रुति, स्मृति, पुराण, तीनों के इतिहासों का निम्न समाधान करते हैं कि वे मन्वादि महर्षि सर्वज्ञ वा त्रिकालज्ञ थे, भविष्य में होने वाले वृत्तान्त भी उन के लिये वर्त्तमान के समान ही साक्षात् प्रतीत होते थे। इसी कारण मन्वादि ने राजा वेनादि का वृत्तान्त पहिले ही कह दिया। महर्षियों को त्रिकाल दर्शी मानने पर ही श्रीमद्भागवतादि में कही उनकी भविष्यद्वाणी सार्थक होगी। द्वितीय समाधान यह है कि महर्षियों को पूर्व कल्पों का भी साक्षात् ज्ञान होता है कि जैसे योगदर्शन विभूति पाद सू०१८ पर व्यासजी कृत योगभाष्य में लिखा है कि—

भगवन्तमावट्यं जैगीषव्यउवाच—दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन मया नरकतिर्यग्गर्भसंभवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनःपुनरुत्पद्यमानेन यत्किंचिदनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमि ॥

महर्षि आवट्यने जैगीषव्य से पूछा उस के उत्तर में जैगीषव्य कहते हैं कि दशवार महाप्रलय हो २ के होने वाली महासृष्टियों में अन्तःकरण के शुद्ध नि-

र्दोष होने से काम क्रोध लोभादि से न दबने वाली शुद्ध बुद्धि के द्वारा नरक और पश्वादि योनियों के गर्भवासादिजन्य दुःख को देखते तथा देवता और मनुष्यों में वार २ उत्पन्न होते हुए हम ने जो कुछ अनुभव किया उस सब को हम दुःख ही निश्चय करते हैं ॥

इस कथन से महर्षियों को अनेक कल्पों का ज्ञान होना सिद्ध है। और यह भी नियम है कि (सूर्याचन्द्रमसौ धाता०) सूर्यचन्द्रमादि मुख्य २ वह सृष्टि जिस का वेदादि शास्त्रों में वृत्त लिखा है प्रत्येक कल्प में वैसी ही होती है इस से उसी नाम रूप से व्यवहार में लायी जाती है। इस के अनुसार जिन का वृत्तान्त मनु में लिखा है वे सब पूर्व कल्प में भी वैसे ही हुए थे और वैसे ही इस कल्प में हुए वैसे ही आगे २ कल्पों में होंगे। तब पूर्व कल्प में हुए वेनादि का वृत्तान्त भी लिखना बन सकता है। इस कथन से यह सिद्ध होता है कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है। सारांश यह है कि मनुस्मृति का सृष्टि के आरम्भ में ही बनना मानें तो भी राजा वेन आदि का इतिहास होने से वह नवीन नहीं ठहर सकती है। इन पक्षों में यह कैसे बनेगा कि "मनु ने विनय से राज्य पाया था" इस का उत्तर यह है कि चौदह मन्वन्तरों में चौदह मनु प्रत्येक ब्राह्मकल्प में होते हैं तब जिन मनु ने विनय से राज्य पाया होगा उन्हीं के लिये वह लेख जानो अपने लिये नहीं।

तीसरी बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि मनुस्मृति वा मानव धर्म शास्त्र के प्रायः सभी अध्यायों में भृगु प्रोक्ता संहिता लिखा गया है। सो सम्भव जान पड़ता है कि प्रथम सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने किसी सूत्रादि रूप में धर्म शास्त्र का अभिप्राय मनुजी को पढ़ाया हो और मनुजी ने भृगु को पढ़ाया। इसी प्रकार गुरु परम्परा से धर्मशास्त्र का पठन पाठन चलता आया। और सिद्ध महर्षियों के आयु का कोई परिमाण नियत तो है ही नहीं, क्योंकि देवों के तुल्य सिद्ध महर्षियों का योगाग्निमय शरीर हो जाता है। इस दशा में सृष्टि के आरम्भ में मनु जी से पढ़े धर्म शास्त्र को महर्षि भृगु जी ने लाखों वर्ष पीछे श्लोक बद्ध किया तब यदि उन्हीं मनु जी के कहे विधि वाक्यों को पुष्ट करने के लिये अर्थवाद वाक्यों में राजा वेनादि की कथाओं के उदाहरण देदिये तब भी कोई दोष नहीं आ सकता। क्योंकि धर्म शास्त्र नाम मुख्य कर विधि वाक्यों का है और विधि वाक्यों में किसी का भी इतिहास नहीं है किन्तु राजा वेनादि के सब इतिहास अर्थवाद वाक्यों में हैं। और अर्थवादों का अभिप्राय विधि वाक्यों की पुष्टि में रहता है।

गोस्वामी ने मनु०अ० १० के ५ । ६ । ७ । ८ श्लोकों में जो महर्षि वाम देवादि की कथायें लिखी बतायी हैं सो भूल है । १० अध्याय के उक्त श्लोकों में किसी की कोई भी कथा नहीं है । परन्तु अ० १० के १०६ आदि श्लोकों में अवश्य है । वहां विधिवाक्य १०२ श्लोक में यह है कि आपत्काल में ब्राह्मण भूखों मरता होतो (सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्) जिनका अन्नादि लेना निन्दित है उन से भी ले लेवे । इसी विधि का अर्थवाद वामदेवादि की परकृति रूप दिखाया है इस का भी उक्तसमाधान जानो । इस तीसरे समाधान की रीति को मान लेने पर भी धर्मशास्त्र के विचार में कुछ दोष नहीं आता है।

गोस्वामी—एकादश अध्याय के १२ श्लोक में व १३ । १४ में एक बड़े कौतुक की बात है । वह यह है कि यदि यज्ञ करने के लिये धन न हो तो वैश्य और शूद्र के यहां से लूट कर ले आवे । वाह ! मनुस्मृति क्या है डांकुओं की उस्ताद है । ऐसे ही शतशः विरोध और असंगत विषय मनुस्मृति में हैं । हम ने ये उदाहरण मात्र दिखाये हैं । ऐसे विषय और स्मृतियों में भी हैं । हमने सर्व स्मृति चक्रवर्त्तिनी मनुस्मृति का ही थोड़ा सा दिग्दर्शन करा दिया है॥

समाधान—" यदि यज्ञ करने के लिये धन न हो तो" यह बात गोस्वामी ने अपनी वे समझी से वा जानते हुए मिथ्या दोषारोप करने के लिये बनावटी लिखी है । क्योंकि मनु में वैसा कहीं नहीं लिखा है । किन्तु अ० ११ । के श्लोक ११ में यहा लिखा है कि यज्ञ करते हुए किसी ब्राह्मण का यज्ञ धन के कम पड़ जाने से खण्डित हुआ जाता हो तो राजा के धर्मात्मा होने पर राजा की सहायता से जिन वैश्य शूद्रों के घर में धन तो हो पर यज्ञादि धर्म में खर्च न किया जाता हो उन से उतना धन लेलवे जिस में यज्ञ पूरा हो जावे । गोस्वामी ने डांकू शब्द द्वेष वा निन्दा की बुद्धि से लिखा है मूल में कोई भी शब्द वैसा नहीं जिस का अर्थ डांका वा चोरी होवे । डांकू लोग राजा नहीं होते और राजा को डांकू के काम की आवश्यकता ही नहीं पड़ सकती । राजा की साधारण इच्छा होते ही वैश्य शूद्रादि सभी धनदे सकते हैं। खास राजा तो दूर रहा आज कल तो जिले के कलक्टर साहब किसी रईस से जरा भी इशारा करदें तो रईस साहब झट विना ही विचारे उस काम के लिये धन दे देते हैं । धन की दो गति मुख्य हैं एक दान दूसरा भोग सो जिस के यहां भोग से अधिक धन है और वह कंजूस होने से धन से धर्म नहीं करता तो यदि कोई बलात्कार भी लेकर ऐसे के धन को धर्म में लगा देवे तो इस प्रकार लेनेको कोई भी विचार शील अनुचित नहीं कह सकता।

हां स्वार्थ के लिये धन लेवे तो अवश्य अनुचित है सो जब स्वार्थ के लिये लेने का मनु में कुछ भी नाम निशान नहीं तो गोस्वामी का यह आक्षेप सर्वथा ही मिथ्या तथा अयोग्य है। पाठक महाशय! मधुसूदन गोस्वामी वृन्दावन निवासी के बनाये "स्मार्त्त धर्म" पुस्तक की यह मीमांसा हमने संक्षेप से की है। इस पर मथुरा निवासी श्री पं० वामनाचार्य जी ने भी "स्मार्त्त धर्म खण्डनम्,, नामक पुस्तक लिखा है जिसका मूल्य ।=) हैं उसमें भी अच्छा समाधान किया गया है। जिन महाशयों को देखना हो मथुरा से मंगावें।

ऐसे विषयों पर हमारी अन्तिम सम्मति यह है कि मनुष्यों में स्वाभाविक प्रवृत्त बुद्धिभेद ही सब विवादों का हेतु है और यह अनिवार्य है। इसी भेद को लेते हुये विविध शास्त्र बन गये हैं बुद्धि भेद के बने रहने पर विवाद कभी मिट नहीं सकता। इस दशा में सबसे अधिक बुद्धिमान् विचारशील वह मनुष्य है और वही संसार का, स्वदेश का, अपनी जाति का, अपने कुल का और अपना भला कर सकता है जो विरोध के विचारों से उपेक्षा उदासीनता करके सबकी अच्छी बातोंका अनुमोदन करता हुआ सबका मित्र बने। परस्पर का विरोध ही हम ब्राह्मणादि भारत वासियों को अधोगति में गिरा रहा है। और यही अंश अंगरेजादि जातियों की उन्नति का कारण है। इस लिये हम मधुसूदन गोस्वामी से अपने अनुचित की क्षमा मांगते हैं कि आगे विरोध के विचारों को न उठाकर देशोपकार शोचिये ॥ अलम् ॥

सनातन-धर्म-दीपक

इस नामका एक पुस्तक "श्री वेंकटेश्वर" प्रेस मुम्बई से पूर्वकाल में छपके प्रकाशित हो चुका है। इससे पहिले जो "स्मार्त्त धर्म" पुस्तक की समालोचना होचुकी है वह पुस्तक भी श्री वेंकटेश्वर प्रेस में ही छपा था। हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि श्री वेंकटेश्वर प्रेस के मालिक सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास जी जब सनातन धर्मी और देशोपकारी धर्मात्मा हैं तब उनके यहां ऐसे देश, जाति, तथा विशेष कर सनातन धर्मके नाश करनेवाले पुस्तक छप२ कर क्यों प्रकाशित होते हैं?। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सेठजी के यहां इस बात का विचार नहीं होता कि यह पुस्तक छापने योग्य है वा नहीं? इसके छपने से देश की तथा धर्म की हानि होगी वा लाभ होगा। सेठ जी के यहां शास्त्री संशोधक कर्मचारी लोग भी अच्छे महात्मा ही रहते हैं। जिनका मुख्य काम है कि प्रथम आये हुए पुस्तकों का अभिप्राय देखकर सेठ जी को शुभ सम्मति देवें कि यह पुस्तक वेदस्मृति पुराण के अनुकूल है वा विरुद्ध इससे धर्म की हानि होगी वा लाभ इत्यादि।

इसके सिवाय यह भी नहीं देखा जाता कि इस पुस्तक का अनुवाद कैसा है मूल के अनुकूल है वा विरुद्ध है। उदाहरणार्थ "सर्व दर्शन संग्रह" पुस्तक भाषानुवाद सहित अभी एक दो वर्ष के भीतर ही श्री वेंकटेश्वर प्रेस में छपा है। जिसका भाषानुवाद अधिकांश रद्दी फेंकने योग्य इस कारण हुआ है कि अनुवादक मनुष्य व्याकरण में पञ्च सन्धि तक भी नहीं जानता और न्याय में तर्कसंग्रह को भी नहीं समझ सकता तब सर्वदर्शन संग्रह जैसे कठिन पुस्तक को समझना तो दूर है। अच्छे नैयायिक विद्वान् लोग सब दर्शन संग्रह को समझ सकते हैं। इसीसे उस भाषार्थ में अक्षरार्थ और अभिप्राय कुछ भी ठीक नहीं है। क्योंकि हम अनुवादक की बुद्धि विद्या से भी परिचित हैं। हम ने जब सुना तो स्वयं पुस्तक भी देखा तब ज्ञात हुआ। सम्प्रति ऐसे अनेक अनभिज्ञ लोग अनुवाद करते पुस्तक बनाते हैं। और लोभ से कुछ धन मिलने के लिये मुम्बई आदि दूर देशों में भेज देते हैं। प्रेसवाले आंख मूंदकर उन को कुछ धन देकर पुस्तक छापने का अधिकार ले लेते हैं। इस अन्ध परम्परा से भी भविष्यत् में देश की तथा धर्म की बड़ी हानि होने का भय है।

अब सेठ जी को तथा अन्य प्रेसवालों को हम विनय पूर्वक सम्मति देते हैं कि आप लोग शोच समझ कर पुस्तक छापा करें। अस्तु—

यह "सनातन धर्म दीपक" पुस्तक वास्तव में श्रुतिस्मृति पुराण के सिद्धान्तों से सर्वथा विरुद्ध है। इस पुस्तक में प्रकाश नामक पांच भाग हैं। प्रथम प्रकाश में सुख वा आनन्द का विचार, तृतीय में साधनों सहित पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्ति, पंचम में राजयोग विषय, शेष बचे द्वितीय चतुर्थ प्रकाशों में वर्ण निर्णय और वर्ण धर्म विवेक है। सब पुस्तक में १२९ पृष्ठ हैं। इन में से ८९ पृष्ठ द्वितीय चतुर्थ प्रकाश के वर्णव्यवस्था विषय में हैं। शेष तीन प्रकाशों का वर्णन केवल ४० पृष्ठों में किया गया है। सो हम इस पुस्तक की संक्षिप्त थोड़ी सी समालोचना वेदादि शास्त्र और युक्ति से विरुद्ध लिखी वर्णव्यवस्था पर करेंगे। इस पुस्तक का जो "सनातनधर्म दीपक" नाम रक्खा है। उसके स्थान में "आधुनिक महामोह" ऐसा नाम रक्खा जाय तो ठीक अर्थ घटेगा। वास्तव में ऐसा नाम सुन कर अनेक सनातनधर्मी लोग ठगे जाचुके हैं। इसी कारण हमारे कई देशहितैषी धर्म प्रेमी ग्राहकों ने हम को अनुरोध के साथ लिखा कि तुम इस पुस्तक पर अवश्य कुछ लिखो। तदनुसार हमने भी स्वीकार करलिया था कि अवश्य लिखेंगे। तब तक बीच में स्मार्त्त धर्म मीमांसा छिड़ गयी इस से अवसर नहीं मिलाथा।

इस पुस्तक के बनाने वाले को संस्कृत व्याकरणादि का बोध नहीं है क्योंकि संस्कृत के पण्डित होते तो अवश्यमेव संस्कृत श्लोकों द्वारा मङ्गलाचरण करते सो न करके दोहा द्वारा करने से संस्कृत का विद्वान् न होना सिद्ध है। निर्माता का नाम "अद्वैतानन्द" है अनुमान से ज्ञात होता है कि यह व्यक्ति वर्णाश्रम से हीन अथवा द्विजों से भिन्न है। अथवा मतङ्गादि के तुल्य उत्पत्ति वाली हो कर शिर मुंडाके कपड़ा रंगलिये गृहस्थों से पुजाने के लिये, महात्मा, परमहंस, स्वामी जी, वा संन्यासी जी बन गये होंगे। क्योंकि शुद्ध वीर्य द्वारा अपने असली माता पिता से उत्पन्न हुआ द्विज पुरुष कदापि ब्रह्मद्रोही नहीं हो सकता। और ब्रह्मद्रोही पुरुष वास्तव में हिंसक होता है। क्योंकि द्रोह नाम मानस वाचिक हिंसा ही शरीर से हिंसा कराती है। (ब्रह्मद्रोही न तिष्ठति) यह भी वेद का ही सिद्धान्त है।

अद्वितीयान्धकार के पृ० १९ में (शंका) वीर्य की परम्परा करके चारो वर्ण क्रम से सनातन काल के चले आते हैं। ब्राह्मणादि के पुत्र क्रम से ब्राह्मणादि ही होते हैं। तब वर्ण स्वयमेव निर्णीत हैं। ऐसी हालत में निर्णय करना वृथा है (ऐसी शंका स्वयं उठाकर)

समाधान-यद्यपि वर्त्तमान काल में शिश्नोदर परायण, दम्भी, पामर, स्वार्थी, मूर्ख, पण्डितमानी, विचारहीन लोक ऐसा ही कहते हैं और मानते हैं तथापि केवल वीर्य से कोई ब्राह्मणादि किसी काल में न हुआ, न होता है, और न होगा, किन्तु गुणों और कर्मों के भेद से परमेश्वर–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों को उत्पन्न करता है। इस पर श्रीमद्भगवद्गीता का प्रमाण है कि–

चातुर्वर्ण्यंमयासृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥

गुण और कर्मों के विभाग से मैंने चारो वर्ण रचे हैं।

मीमांसा–मोहान्धकारानन्द का इत्यादि लेख युक्ति प्रमाण दोनों ही से शून्य है। दम्भी, पामर, पण्डितमानी, इत्यादि कुवाच्य ब्राह्मणों के लिये ही लिखे गये हैं क्योंकि क्षत्रिय लोग ठकुरायत के अभिमानी और वैश्य लोग सेठपन के अभिमानी प्रायः होते और होना चाहते हैं किन्तु क्षत्रियादि लोग पण्डितमानी खोजने पर भी नहीं मिलेंगे। इस से सिद्ध है कि ब्राह्मण लोग ही पण्डितमानी होते हैं। इस कारण अद्वैत मोहानन्द का अद्वैत ब्रह्मद्रोही होना सिद्ध है। केवल वीर्य से तो ब्राह्मणादि कोई भी प्राणी कभी नहीं होता

किन्तु रजवीर्य दोनों से ही सदा सब होते आये हैं सोही अब भी होते हैं। और ऐसा ही आगे भी होगा। इस महात्मा ने जैसी निन्दा ब्राह्मणों की की है वैसी स्वा० दयानन्द जी ने तथा आर्यसमाज ने भी नहीं की। क्योंकि महर्षि जाबाल की माता जबाला को इस ने वेश्या और गड़रनी जाति लिखा है। जब कि आगे महर्षि व्यासादि की उत्पत्ति इतिहासों के सहारे से लिखी है तो इस से सिद्ध है कि उक्त भिक्षुक इतिहास को मानतेहैं। इस से लिखा जाता है कि शमीक ऋषि का पुत्र शृङ्गी नामक छोटा सा बालक था। बालकों में खेलता था उस ने विद्या शिक्षादि कुछ भी गुण वा उत्तम कर्म नही किये थे केवल तपस्वी माता पिता के ही प्रताप से राजा परीक्षित् को शाप दिया था जो शक्ति भर अनेक उपाय होने पर भी शाप को कोई भी मिथ्या न कर सका। द्वितीय अष्टावक्र ऋषि का इतिहास भी जिस किसी ने सुना जाना है वे सभी मानेंगे कि उन में जन्म से ब्राह्मणत्व के सभी अंश पूरे विद्यमान थे। इस प्रकार के उदाहरण श्रुति, इतिहास, पुराणों, तथा धर्मशास्त्रादि में सैकड़ों मिलेंगे जिन से सिद्ध है कि एक दो दृष्टान्त नहीं किन्तु सैकड़ों, सहस्रों पुरुष केवल तपस्वी माता की सन्तान होने मात्र से बड़े २ प्रतापी तेजस्वी पूर्ण ब्रह्मतेज धारी ब्राह्मण हो गये हैं। सम्प्रति यद्यपि कलि के प्रभाव से ब्राह्मणादि सभी वर्णों का तेज प्रभाव घट गयाहै तथापि अद्वैतानन्द भिक्षु वा अन्य कोई भी लोग जिन को यह अभिमान हो कि विद्यादि गुण हुए वा सन्ध्यादि कर्म किये विना जन्म मात्र से ब्राह्मणत्व नहीं हो सकता है। वे लोग पहिले हमारे साथ कुछ शर्त्त नियत करलें फिर दश वा पांच लड़के क्षत्रिय वैश्य शूद्रों के ऐसे अच्छों में अच्छे खोज कर छांट लें। जिन के संस्कार हुए हों, जिन को अच्छे प्रकार ग्रन्थों के अच्छे २ विषय पढ़ाये गये हों, जिन से सन्ध्यादि कर्म भी कराये जाते हों। तथा हम भी ब्राह्मण कुलों में से दश लड़के ऐसे छांट लेंगे जिन के संस्कार उपनयनादि भी न हुए हों, व्याकरणादि कुछ भी न पढ़े हों, कर्म भी कुछ न करते हों। ऐसे दोनों प्रकार के लड़कों की परीक्षा (इम्तिहान) लिया जाय कि ब्रह्मत्व के स्वाभाविक लक्षणों में कौन उत्तीर्ण होते हैं। यदि क्षत्रियादि के लड़के ब्रह्मत्व में पास हो जायं तो हम भी मान लेंगे और भिक्षानन्दादि का विजय सब भूमण्डल पर प्रसिद्ध हो जायगा फिर हम भी केवल गुण कर्मों से वर्णव्यवस्था मानने लगेंगे। परन्तु हम यही दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ कहते हैं कि क्षत्रियादि के बालक कदापि ब्रह्मत्व के विचारों में पास नहीं हो सकते किन्तु गुण कर्महीन होने पर भी स्वाभा-

विक शमदमादि गुण कर्मों के द्वारा ब्राह्मणों के बालक ही पास होंगे। और शम, दम,तप (धर्म के लिये कष्ट उठाना), शौच, क्षमा, कोमलता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता, ये ही ब्राह्मण के स्वाभाविक लक्षण हैं। हमे बड़ा आश्चर्य यह होता है कि भिक्षानन्द ने अपने पुस्तक के पृष्ठ ४९ में (शमोदमस्तपः) इत्यादि भगवद्गीता का श्लोक भी लिखा है पर तो भी कुछ होश न आया कि हम क्या कहते हैं जो कुछ कहते लिखते हैं उस को शोच तो लें उस का असल में ठीक मतलब क्या है ? । सो कुछ भी न शोच विचार के जो मन में आया लिखते गये " बोलत हैं पर नाहि कछू सुधि ज्यों ही बयारि ते बाजत कुम्भा " यही हालत, भिक्षानन्द की है। जब कि (शमोदमस्तपः०) इत्यादि गीता के श्लोक लिखे तो इन श्लोकों से भी जन्म में ही वर्ण व्यवस्था सिद्ध है क्योंकि शम दमादि ब्राह्मण के स्वभावज कर्म बतलाये हैं, स्वभाज कर्म वे ही होते हैं जो उस की पैदाइश (उत्पत्ति) के साथ ही उस में आये हों। जैसे अग्नि स्वभाव से गर्म है, जल स्वभाव से शीतल है, वायु में स्वाभाविक चेष्टा है। इसी के अनुसार अग्नि के संयोग से जल में आने वाली गर्मी स्वाभाविक नहीं समझी जावेगी। इसी के अनुसार ब्राह्मण के भी शमादि गुण रज वीर्य सम्बन्धी ब्रह्मत्व से बने होने से स्वाभाविक कहाते हैं। जैसे जल के स्वाभाविक शीत गुणका नाश नहीं होता, जैसे अग्नि का स्वाभाविक गुण अग्नि के साथ नियम से रहता है कदापि दूर नहीं होता। केवल इतना होता है कि कभी अग्नि का तेज मन्द और कभी उद्दीपक ईंधन वायु आदि से प्रबल बढ़जाता है। इसी के अनुसार ब्रह्म तेजभी कभी मन्द शान्त और कभी उद्बोधक उपायों से बढ़ जाता है। कि जैसे शृङ्गी बालक ब्राह्मण के उद्बोधक हेतु से प्रज्वलित हुए ब्राह्म तेज से राजा परीक्षित भस्म हो गया। अभिप्राय यह है कि सब शास्त्रकारों तथा सब विद्वानों की एक ही राय से सिद्ध है कि उत्पत्ति के साथ ही प्रकट होने वाला अंश ही उस २ का स्वभाव कहाता है। इस से भिन्न स्वाभाविक गुण कर्मों सहित ब्राह्मणादि वर्णों को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है। यही अर्थ (चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं०) श्लोक का है और यही तात्पर्य (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्०) इत्यादि वेदमन्त्र का है। अब यहां से आगे हम संक्षेप से भिक्षानन्द के आक्षेपों वा कुतर्कों का उत्तर लिखेंगे।

भिक्षानन्द–जैसे मनुष्य के वीर्य से मनुष्य ही उत्पन्न होता है। मनुष्य से घोड़ा

नहीं होता घोड़ा के वीर्य से मनुष्य नहीं होता, वैसे गेंहूं से गेंहूं जौ से जौ होता है अर्थात् वीर्य से वर्णव्यवस्था का कुछ सम्बन्ध नहीं है ।

उत्तर—जैसे मनुष्यादि के वीर्य से मनुष्यादि ही उत्पन्न होते हैं वैसे ही अङ्गरेज वीर्य से गोरा पैदा होते हैं काबिलियों से काबिली पैदा होते बंगालियों से बंगाली पैदा होते हैं किसी भी अङ्गरेज से काला आदमी पैदा नहीं होता । इस प्रकार हिन्दुस्तान में पैदा होने वाले गोरा मनुष्य यूरेशियन कहाते हैं । यद्यपि उन में क्षेत्र भेद से तथा जल वायु के भेद से कुछ सूक्ष्म अन्तर यूरोपियनों से होजाता है तथापि वे हिन्दुस्तानी मनुष्यों में छिप नहीं सकते । मनुष्यों से मनुष्य पैदा होते हैं यह तो ठीक है पर सब प्रकार के मनुष्यों से सब प्रकार के मनुष्य पैदा नहीं होते किन्तु जैसों से तैसे ही पैदा होते हैं। अंगरेज मुसलमान भी अच्छे खान दान के तथा नीच खान दानके बालकों को एक से नहीं मानते। लाट आदि खास २ बड़े २ अधिकार जिस खान दान के मनुष्यों को दिये जाते हैं उनसे भिन्न छोटे खानदान वालों को वे अधिकार कदापि नहीं मिलते । विवाहादि व्यवहार भी सब के साथ सब के नहीं होते। इसी खानदान को हमारे यहां कुलीनता कहते हैं । अंग्रेजादि लोग भी एक प्रकारान्तर से जन्म से ही वर्णव्यवस्था मानते हैं । परन्तु उन के यहां की वर्णव्यवस्था किसी शास्त्रीय नियम में बद्ध न होने से उसमें अनेक प्रकार की भूल वा त्रुटि हैं । और हमारे यहां की वर्णव्यवस्था शास्त्रीय नियम से सर्वथा बद्ध होने से सांगोपांग सर्वथा ठीक थी । जिस में स्वदेशी वेदमतानुयायी राजा का शासन न रहने से अनेक प्रकार का घपला पैदा हो गया है । तथा आगे २ और भी बिगड़ने का भय है । प्रयोजन यह है कि भूमण्डल भर के सभी मनुष्य मनुष्यपदवाच्य होने पर भी अंग्रेजादि से अंग्रेजादि भिन्न २ प्रकार के मनुष्य ही पैदा होते हैं । उन की आकृति (बनावट) रूप, रंग, भाषादि में अनेक प्रकार का भेद अनिवार्य है । वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि में वास्तविक शरीर के स्थूलांशों में प्रत्यक्ष रहने वाला भेद भी अवश्य है । जिस को मनुष्य विशेष अभ्यास करने से वा सदा ध्यान रखने से जान सकता है । गौ–बैल, भैंसी–भैंसा, आदि का भेद दूर से नहीं जान पड़ता, समीप से ध्यान पूर्वक देख ने से जाना जाता है । हम को चीटी सब एकसी दीखती हैं पर उन में अवान्तर भेद अनेक प्रकार का है । और उस २ प्रकार की चीटियों से उसी २ प्रकार की पैदा होती हैं । जैसे

मनुष्य से मनुष्य पैदा होता है वैसे ही घोड़े से घोड़े ही पैदा होते हैं परन्तु खास २ नसलों वाले घोड़े अपने २ उसी नसल के घोड़ा घोड़ियों से पैदा होते हैं। यदि दो नसल के घोड़ा घोड़ी के मेल से पैदा हो तो उस की नसल बिगड़ी मानी जाती है। वही घोड़ा दुरंगा अर्थात् वर्णसंकर हो जाता है। अर्थात् जैसे घोड़ों में अवान्तर जाति अनेक प्रकार की हैं वैसे ही मनुष्य की अवान्तर जातियां के भेद भी ब्राह्मणादि चार वर्ण और अनेक अन्तराल वर्ण हैं। गेहूं जौ आदि एक २ अन्न की अनेक २ जाति हैं उनमें भी उस २ जाति के गेहूं जौ से उसी २ जाति के गेहूं जौ जैसे पैदा होते हैं। वैसे ही मनुष्य जाति की अवान्तर जातियों में ब्राह्मणादि से ब्राह्मणादि ही पैदा होते हैं। जैसे गेहूं जौ आदि की अवान्तर जातियों के सूक्ष्मभेदों को परीक्षक लोग विशेष ध्यान से देखने शोचने पर जान लेते हैं वैसे ही ब्राह्मणादि वर्णों के सूक्ष्म अवान्तर भेदों को भी शोचने विचारने वाले परीक्षक लोग जान सकते हैं।

जैसे जिसने अच्छे वा खोटे सुवर्ण चांदी वा जवाहरात को जानने का अभ्यास किया है वही उसके भेदों को जान सक्ता है वैसे ही सूक्ष्मदर्शी अभ्यासी लोग ब्राह्मणादि लोगों की भी आकृति देखकर ही परीक्षा कर सक्ते हैं। और अपूर्व दृष्ट मनुष्य का वर्ण पूछे विना ही उस पर कोई विशेष ऊपरी वर्ण का चिन्ह न होने पर भी बता सक्ते हैं कि तुम अमुक वर्ण हो। परन्तु जैसे अच्छे बुरे सुवर्णादि की परीक्षा सब कोई नहीं कर सकता वैसे ही ब्राह्मणादि वर्णों की अथवा वर्णसंकरों की परीक्षा देखने मात्र से सब कोई नहीं कर सक्ता है। प्रयोजन यह कि जिन ब्राह्मणादि के कुलों में व्यभिचारादि दोष से कोई वर्णसंकर उत्पन्न होगया हो वा जो स्वयं निकृष्ट हीनजाति के होने पर भी देशान्तर में जाके वा रंगे हुये कपड़े पहन कर शिर मुंडा के अपने को उच्च जाति का कहते प्रसिद्ध करते हैं उन सबको कोई परीक्षक पुरुष तो देखते ही जान सकता और कोई उनके लक्षण गुण कर्मों की जांच पड़ताल करके जान सकते हैं कि यह नीच वा वर्ण संकर है। क्योंकि—

पित्र्यंवाभजतेशीलं मातुर्वोभयमेववा।
नकथंचनदुर्योनिः प्रकृतिंस्वांनियच्छति॥ १ ॥ अ० १०

मनुजी कहते हैं कि जो नीच माता पिता से वा व्यभिचार के द्वारा उत्पन्न हुआ है उस में पिता का वा माता का अथवा दोनों का दुर्गुण वा नीच स्वभाव अवश्यमेव आता है इससे वह अपने नीच स्वभाव को परीक्षक के सामने परीक्षा के समय कदापि छिपा नहीं सकता।

यह भी निश्चय है कि जैसे चोर मनुष्य वा नीच कर्म करनेवाले व्यभिचारी आदि लोग सदा स्वभाव से ही रात्रि के अन्धकार को ही अच्छा समझते मानते और इसी कारण प्रकाश से विरोध भी रखते हैं। वैसे ही नीच वर्णसंकर लोगों का भी स्वभाव यही होगा कि वे स्वभाव सिद्ध वर्ण व्यवस्था का खण्डन करें विशेष कर ब्राह्मणों से द्रोह करें। जैसे उल्लू पक्षी सूर्य के उदय को बुरा मानता है वैसे ही वे भी ब्रह्मत्व के ज्ञान प्रकाश को बुरा समझते हैं। इसी से ब्राह्मणादि उत्तम कुलों में भी जो व्यभिचारादि दोष से वर्णसंकर हो जाते हैं उनकी भी परीक्षा हो सकती है।

भिक्षु-(प्रश्न) जो वीर्याधीन ही ब्राह्मणादि हैं तो यावत्काल पर्यन्त ब्राह्मणादि वीर्योत्पन्न शरीर स्थित रहे तावत्काल पर्यन्त ब्राह्मणत्वादि निवृत्त न होना चाहिये। परन्तु हमारा ब्राह्मणत्वादि तो तुच्छ मुसलमान ईसाई आदि के हुक्के, रोटी, पानी से ही निर्वाण होजाता है। और मरण पर्यन्त ईसाई मुसलमान, आदि नामसे प्रसिद्ध रहते हैं॥

उत्तर-ब्राह्मणादि वीर्याधीन अवश्य हैं इस में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है और यह भी निश्चित जानो कि ईसाई आदि के हुक्का, पानी, रोटी आदि से वह ब्राह्मणादिपन निवृत्त नहीं हो सकता, और न होता है। किन्तु यह लिखने वाले भिक्षानन्द की बेसमझी है। हुक्का का असली सोता वा मूल जिस में से हुक्का में धूम आता है सैकड़ों हिन्दू मुसलमान एक दूसरे की उस चिलम को मिल मिला पीते हैं। राजपुतानादि अनेक प्रान्तो में मुसलमानों की मुसक से पानी पीने की चाल है वहां मुसलमानों के पानी से कोई भी हिन्दू मनुष्य मुसलमान नहीं हो जाता, किन्तु वे सब अपनी २ जाति में बने रहते हैं। विलायत में अनेक बड़े २ प्रतिष्ठित लोग हो आये और अब भी बराबर जाया करते हैं तथा यहां भी अनेक जण्टलमैन लोग होटलादि में ईसाई मुसलमानों की बनाई डबल रोटी खाने लगे हैं पर इतने मात्र से वे कोई भी ईसाई मुसलमानादि नहीं हो गये। किन्तु ईसाई मुसलमान एक प्रकार के मज़हब वा मत हैं, उन को स्वीकार करने वाले अवश्य ईसाई मुसलमान हो जाते हैं। यद्यपि नीच अपवित्र म्लेच्छादि का बनाया वा स्पर्श किया अन्न जल वा चिलम आदि खाने पीने से अच्छे ब्राह्मणादि की उत्तमता में दाग लगजाता, वे दोषी अपराधी पापी वा प्रायश्चित्ती हो जाते हैं। इसलिये नीचों के साथ खान पान नहीं करना चाहिये और कोई भूल से करे तो उस को प्रायश्चित्त करना कराना चाहिये। तथापि इस खानपान मात्र से ईसाई मुसलमान कोई नहीं हो सकता॥ (शेष आगे)

आ० स० अं० १० पृ० ४५६ से आगे दैवतमीमांसा

जब योगी पुरुष मधुमती योग भूमि (योग की अवस्था विशेष) को साक्षात् करता अर्थात् योग की सीढ़ी पर पहुंच जाता अथवा योगसिद्धि में पास (उत्तीर्ण) हो जाता है तब (परीक्षार्थ) स्वर्ग स्थानों वाले देवता लोग उस के अन्तःकरण की विशेष शुद्धि को देखते हुए अपने स्थानों से योगी को परिचय देते हुए समीप आकर निमन्त्रण देते अर्थात् कहते हैं कि भोः योगिन् ! यहां आओ बैठो यहां रमण करो। यह स्वर्ग का भोग बड़ा उत्तम कमनीय है। यह अलौकिक कन्या दिव्य रूपवती कामना के योग्य है। यह देखो स्वर्ग का रसायन कैसा अच्छा है कि जिस से जरा (जीर्ण वृद्ध) अवस्था और मृत्यु कभी पास नहीं आता, यह रसायन जरामृत्यु को हटा देता है। इसी से हम देवता लोग अजर अमर कहाते हैं। देखो यह आकाशमें स्वच्छन्द चलने वाला उत्तम विमान है। देखो ये कल्प वृक्ष, मन्दाकिनी पुण्य नदी, सिद्ध, महर्षि, उत्तम अनुकूल सदायुवती अलौकिक रूपवती अप्सरा, दिव्य श्रोत्र (जिन से एक जगह बैठा हुआ सब लोकों की हजारों लाखों कोश की बात समीप के तुल्य ही सुन सके) दिव्यचक्षु, (जिन से अत्यन्त दूर लोक लोकान्तरों के पदार्थ दीख पड़ें ऐसी आंखें दिव्य कहाती हैं) वज्र के तुल्य शरीर जो न अग्निमें जले न शस्त्रों से काटा जासकें, ऐसा अलौकिक देवताओं सम्बन्धी स्वर्गका सब सामान तुमको अपने पुण्यके प्रताप से प्राप्त होता है। इस अविनाशी अजर अमर देवताओं के प्रिय स्थान स्वर्ग को आप स्वीकार कीजिये। यह सब स्वर्गका सामान आपके लिये उपस्थित (तय्यार) है॥

देवताओं के ऐसे निमन्त्रण को सुनकर योगी न तो स्वीकार करे और न कुछ विस्मय करे किन्तु उदासीन भाव से चुप रहे और संग तथा विस्मय करने में फिर अनिष्ट प्राप्त होने की सम्भावना से डरे कि संसार के विविध दुःखाग्नि में जलते भुनते हुए तथा जन्म मरण रूप घोरान्धकार में अन्धे के तुल्य असंभवित सुख की प्राप्ति के लिये इधर उधर भटकते भागते हुए मैं ने अविद्यादि क्लेशरूप घोरान्धकार का नाशक योग रूप दीपक बड़ी कठिनाई से प्राप्त कर पाया है। उस दीपक को ये मृग तृष्णा के तुल्य मिथ्या विषय भोगों की वासनाओं के हेतु वायु-बुता देनेवाले हैं। यह दीपक फिर कहीं बुत गया तो मार्ग दीखना दुर्लभ हो जायगा। फिर मार्ग न मिलने से टक्करें खाया करूंगा। जब मुझ को होश हो गया कल्याण का मार्ग दीखने लगा ठीक सच्चा मार्ग मुझे मिल गया तो फिर इन विषयों की मृगतृष्णा से वञ्चित हो कर क्या फिर उसी संसार के दुःखाग्नि का ईंधन म अपने को ब-

नाऊं ? ऐसा विचार करता हुआ मन में ही कहे कि दीन-तुच्छ पुरुषों से प्रार्थनीय स्वर्गादि भोग और देवताओं को नमस्कार है ये सब भोग स्वप्नवत् मिथ्या हैं ऐसा बुद्धि से निश्चित करके समाधि का विचार करे ॥

पाठक महाशय ! इस योगभाष्य के लेख से क्या स्वर्ग के सब सामान सहित चेतन देवता सिद्ध नहीं होते ? । क्या जड़ पदार्थों मात्र को देवता मानने पर यह योग भाष्य का लेख कभी घट सकता है ? । सामश्रमी को पूछना चाहिये कि आप तो देवता पक्ष मूर्ख पौराणिकों की कल्पना कह चुके हो क्या यह योग भाष्य दर्शन शास्त्र नहीं है ? । इस दर्शन शास्त्र से सिद्ध पुराणानुकूल देवतावाद को आप कैसे उड़ा सकोगे ? । तथा जगन्मोहन जी से भी पूछना चाहिये कि यह योगदर्शन का प्रमाण क्यों ठीक नहीं ? । यदि ठीक है तो पूर्ववत् अपनी निष्पक्षपातता दिखाते हुए स्वीकार करके हमारे श्रम को सफल कीजिये ।

अब देवता विषय में वेदान्त दर्शन का कुछ विचार लिखा जाता है । यद्यपि वेदान्तदर्शन में विशेष विस्तार से यह विषय लिखा गया है तथापि हम उस सब को न लिख कर विशेष उपयोगी विषय यहां लिखेंगे । वेदान्त दर्शन अ० १ । पाद ३ सू० २६-३३ तक आठ सूत्रों में तथा ब्रह्ममीमांसा भाष्य के ३५ पृष्ठोंमें इस देवता विषय का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है ।

सू०-तदुपर्य्यपि वादरायणः सम्भवात् ॥ २६ ॥

भा०-अङ्गुष्ठमात्रश्रुतिर्मनुष्यहृदयापेक्षा मनुष्याधिकारत्वाच्छास्त्रस्येत्युक्तम् । तत्प्रसङ्गादिदमुच्यते । वाढं मनुष्यानधिकरोति शास्त्रं नतु मनुष्यानेवेतीह ब्रह्मज्ञाने नियमोऽस्ति,तेषां मनुष्याणामुपरिष्टाद्ये देवादयस्तानप्यधिकरोति शास्त्रमिति वादरायण आचार्य्यो मन्यते,कस्मात् सम्भवात् । सम्भवति हि तेषामप्यर्थित्वाद्यधिकारकारणम् । तत्रार्थित्वं तावन्मोक्षविषयं देवादीनामपि सम्भवति । विकारविषयविभूत्यनित्यत्वालोचनादिनिमित्तम् । तथा सामर्थ्यमपि तेषां सम्भवति मन्त्रार्थवादेतिहासपुराणलोकेभ्यो विग्रहवत्त्वाद्यवगमात् । न च तेषां कश्चित्प्रतिषेधोऽस्ति । न

चोपनयनादिशास्त्रेणैषामधिकारो,निवर्त्तितः । उपनयनस्य वेदाध्ययनार्थत्वात् । तेषां च स्वयं प्रतिभातवेदत्वात् । अपि चैषां विद्याग्रहणार्थं ब्रह्मचर्यादि दर्शयति "एकशतं हवै वर्षाणि मघवा प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास" (छान्दोग्योपनि० प्रपा० ८ खं० ११) "भृगुर्हवै वारुणिर्वरुणं पितरमुपससार-अधीहि भगवो ब्रह्म,"इत्यादि । यदपि कर्मस्वनधिकारकारणमुक्तं "न देवानां देवान्तराभावान्न ऋषीणामार्षेयान्तराभावात्" इति न तद्विद्यास्वस्ति। नह्रीन्द्रादीनां विद्यास्वधिक्रियमाणानामिन्द्राद्युद्देशेन किञ्चित्कृत्यमस्ति। न च भृग्वादीनां भृग्वादिसगोत्रतया,तस्माद्देवादीनामपि विद्यास्वधिकारः केन वार्यते ? । देवाद्यधिकारेऽप्यङ्गुष्ठमात्रश्रुतिः स्वाङ्गुष्ठापेक्षया न विरुध्यते ॥

भाषार्थः—(अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो०) इत्यादि श्रुति में जो अङ्गुष्ठमात्र पुरुष कहा है वह कथन मनुष्य के हृदय के अंगुष्ठमात्र नाप को लेकर किया है। इसका अभिप्राय पीछे यह कह चुके हैं कि वेदान्तादि शास्त्र को पढ़ने जानने का अधिकार मनुष्य को है। इसमें यह प्रश्न शेष रहा कि क्या मनुष्य से भिन्न किसी अन्य को वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार नहीं ? इसके उत्तर में यह सूत्र तथा भाष्य है कि मनुष्यों को शास्त्र का अधिकार होना तो सत्य है परन्तु मनुष्यों को ही अधिकार है अन्य को नहीं यह नियम नहीं है। क्योंकि उन मनुष्यों से ऊपरी उत्तम कक्षा में विद्यमान जो देवतादि हैं उन को भी वेद वेदान्त शास्त्र के पढ़ने जानने का अधिकार सम्भव होने से अवश्य है। क्योंकि उन देवादिकों को भी मोक्ष के अलौकिक आनन्दानुभव की चाहना होने से अर्थी होना आदि ज्ञान के अधिकार का कारण उन में भी सम्भव ही है। अर्थात् उन देवादि का अपने से ऊपरी उत्तम कक्षा विषय में अर्थी होना संभव ही है। क्योंकि जीवमात्र अपने से ऊपरी कक्षा के उत्तम सुख की चाहना स्वभाव से ही रखता है। विषयों सम्बन्धी सुख विकार जन्य होने से उसकी सिद्धियों को अनित्य देखते हुए देवता भी उससे ऊपरी अबाध्य सुख के अर्थी होते हैं। मन्त्र ब्राह्मण रूप वेद तथा स्मृति,

इतिहास, पुराण, और लोक व्यवहार से सिद्ध है कि देवता साकार हाथ पांव मुखादि अङ्गोंवाले हैं। इस कारण शास्त्र विद्या पढ़ने जानने का सामर्थ्य भी उन में होना सम्भव ही है। उन वेदादि में वर्णन किये देवता विषय का निषेध वा खण्डन भी श्रुति स्मृतियों में नहीं है। इससे देवता का विग्रहवती (साकार) होना भी सिद्ध ही है (पूर्वमीमांसा सम्बन्धी पूर्व पक्षों का समाधान आगे मिलेगा) यदि कोई कहे कि उपनयन वेदारम्भ संस्कार होने से द्विज लोग वेदाध्ययन के अधिकारी बनते हैं। जब देवताओं के उपनयन संस्कार होने का नियम ही नहीं तो वेदाधिकारी कैसे होंगे?। इसका समाधान यह है कि देवता लोगों को मनुष्यों के तुल्य पढ़े घोखे विना ही वेद का प्रतिभान (स्मरण वा साक्षात्कार) हो जाता है। परन्तु तत्त्वज्ञान की विद्या को समझने के लिये ब्रह्मचर्य धारण करने की आवश्यकता अवश्य है। इसी लिये छान्दोग्य श्रुति में देवताओं को भी विद्याग्रहणार्थ ब्रह्मचर्य धारण करना दिखलाया गया है कि" देवराज इन्द्र ने प्रजापति के समीप में ब्रह्मविद्या प्राप्ति के लिये एक सौ एक १०१ वर्ष ब्रह्मचर्य नियम व्रत धारण सहित निवास किया,, तथा" वरुण के पुत्र भृगुजी अपने पिता वरुण के निकट गये और कहा कि भगवन्! ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिये,, इत्यादि प्रमाणों से ऋषि देवताओं का विद्याधिकारी और विद्योपदेश के अर्थी होना सिद्ध है। और देवों में देवान्तर वा ऋषियो में ऋष्यन्तर न होने से अर्थात् इन्द्र देवता जब स्वयं यज्ञ करें तब इन्द्र के आवाहन के समय अन्य वह इन्द्र कौन है? जिसको इन्द्र अपने यज्ञ में बुलावें। इससे यज्ञादि कर्मों में देवताओं वा ऋषियों का अधिकार नहीं यह बात भी पूर्वमीमांसा में कही है (इस का भी विशेष समाधान आगे होगा) यहां केवल इतना ही कहते हैं कि ब्रह्मविद्या ग्रहण करने और उस के अधिकारी होना सिद्ध करने के साथ कर्म में अधिकार होने न होने का कुछ संबन्ध नहीं है अर्थात् कर्म में देवों को अधिकार होने न होने दोनों दशा में ब्रह्मविद्या के अर्थी तथा अधिकारी देवता हो सकते हैं। क्योंकि ब्रह्मविद्या के अधिकारी हुए इन्द्रादि देवताओं के नामोद्देश से कुछ भी कृत्य शेष नहीं रहता। अर्थात् ज्ञान होने से पहिले २ ही कर्म का अधिकार है ज्ञान होने पर तो (क्षीयन्ते चास्य कर्माणि) यही सिद्धान्त होता है। इस कारण ब्रह्मज्ञान होने पर इन्द्रादि देवताओं को कर्माधिकारी

होने की आवश्यकता ही शेष नहीं रहती है। इसी के अनुसार ऋषियों के लिये भी जानो। तिस से सिद्ध हुआ कि देवताओं को ब्रह्मविद्या में अधिकार है उस का बाधक कोई भी नहीं है। अब रहा यह कि अङ्गुष्ठ प्रमाण मात्र हृदयावच्छिन्न मनुष्य जीवात्मा ब्रह्मविद्या का अधिकारी है ऐसा कहो तो अपने अङ्गुष्ठ से परिमित देव हृदयस्थ आत्मा भी वैसे ही ब्रह्मविद्या का अधिकारी सिद्ध जानो॥

सू०–विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॥२७॥

भा०–स्यादेतद्ध यदि विग्रहवत्त्वाद्यभ्युपगमेन देवादीनां विद्यास्वधिकारो वर्ण्येत, विग्रहवत्त्वाहृत्विगादिवदिन्द्रादीनामपि स्वरूपसन्निधानेन कर्माङ्गभावोऽभ्युपगम्येत, तदा च विरोधः कर्मणि स्यात्, नहीन्द्रादीनां स्वरूपसन्निधानेन यागेऽङ्गभावो दृश्यते न च सम्भवति। बहुषु यागेषु युगपदेकस्येन्द्रस्य स्वरूपसन्निधानानुपपत्तेरिति चेत्, नायमस्ति विरोधः कस्मादनेकप्रतिपत्तेः। एकस्यापि देवतात्मनो युगपदनेकस्वरूपप्रतिपत्तिः सम्भवति। कथमेतदवगम्यते, दर्शनात्। तथाहि–कति देवाइत्युपक्रम्य "त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रा" इति निरुच्य, कतमे ते इत्यस्यां पृच्छायां महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाइति ब्रुवती श्रुतिरेकैकस्य देवतात्मनो युगपदनेकरूपतां दर्शयति। तथा त्रयस्त्रिंशतोऽपि षडाद्यन्तर्भावक्रमेण कतम एको देव इति प्राण इति प्राणैकरूपतां देवानां दर्शयन्ती तस्यैवैकस्य प्राणस्य युगपदनेकरूपतां दर्शयति। तथा स्मृतिरपि–

आत्मनोवैशरीराणि बहूनिभरतर्षभ।
कुर्याद्‌योगीबलंप्राप्य तैश्चसर्वैर्महींचरेत् ॥
प्राप्नुयाद्विषयान्कैश्चित्कैश्चिदुग्रंतपश्चरेत्।
संक्षिपेच्चपुनस्तानि सूर्योरश्मिगणानिव ॥

इत्येवं जातीयिका प्राप्त्याणिमाद्यैश्वर्याणां योगिनामपि युगपदनेकशरीरयोगं दर्शयति। किमु वक्तव्यमाजानसिद्धानां देवानाम्। अनेकरूपप्रतिपत्तिसम्भवाच्चैकैका देवता बहुभीरूपैरात्मानं प्रविभज्य बहुषु यागेषु युगपदङ्गभावं गच्छति। परैश्च न दृश्यतेऽन्तर्धानादिशक्तियोगादित्युपपद्यते।

अनेकप्रतिपत्तेर्दर्शनादित्यस्या अपरा व्याख्या–विग्रहवतामपि कर्माङ्गभावचोदनास्वनेका प्रतिपत्तिर्दृश्यते। क्वचिदेकोऽपि विग्रहवान्नानेकत्र युगपदङ्गभावं न गच्छति। यथा बहुभिर्भोजयद्भिर्नैको ब्राह्मणो युगपद्भोज्यते। क्वचिच्चैकोऽपि विग्रहवाननेकत्र युगपदङ्गभावं गच्छति। यथा बहुभिर्नमस्कुर्वाणैरेको ब्राह्मणो युगपन्नमस्क्रियते। तद्वदिहोद्देशपरित्यागात्मकत्वाद्यागस्य विग्रहवतीमप्येकां देवतामुद्दिश्य बहवः स्वं स्वं द्रव्यं युगपत्परित्यक्ष्यन्तीति विग्रहवत्त्वेऽपि देवानां न किंचित्कर्मणि विरुध्यते॥

भावार्थ–ऊपर कहा देवताओं को ब्रह्मविद्या ग्रहण करने का अधिकार तब सिद्ध हो सकता है कि जब प्रथम इन्द्रादि देवतों का साकार होना स्वीकार करलिया जाय। और साकार मान लेने पर ही ऋत्विज् आदि के तुल्य अपने स्वरूप से यज्ञ में उपस्थित हुए देवताओं का कर्माङ्गभाव स्वीकार हो सकता है। सो यदि ऐसा हो तो कर्म में विरोध होगा। क्योंकि ऋत्विजादि के तुल्य अपने स्वरूप से उपस्थित होकर इन्द्रादि देवतों का अङ्गभाव होना नहीं दीखता है। और ऐसा होना संभव भी नहीं है क्योंकि दर्शेष्टि आदि के एक ही मुहूर्त्त में भूमण्डल भरके सभी लाखों क्रोड़ों ब्राह्मणादि अग्निहोत्री एक ही साथ इन्द्रदेवता का आवाहन करेंगे तब एकही इन्द्र एक ही काल में लाखों यज्ञों में एकसाथ स्वरूप से उपस्थित हो सके यह युक्ति से विरुद्ध है। यह पूर्वमीमांसा वालों का पूर्वपक्ष है। ऐसी दशा देखते हुए मीमांसक लोग विग्रहवती (साकार) देवता नहीं मानते किन्तु कर्मात्मक देवता मानते हैं जिस का समाधान हम पूर्वमें दिखा चुके हैं। परन्तु वेदान्त के सूक्ष्म

दर्शी व्यास जी कहते हैं कि देवता के साकार मानने पर अनेक यज्ञ कर्मों में इन्द्रादि देवोंके एकसाथ उपस्थित होनेमें पूर्वोक्त विरोध ठीक नहीं है क्योंकि एक ही देवतात्मा के एक ही काल में अनेक स्वरूप हो सकते हैं। सो यह कैसे जाना गया? तो उत्तर यह है कि श्रुति में दीखने से। बृहदारण्यो-पनि० अ० ५ ब्रा० ९ में "कितने देवता हैं?" ऐसे प्रश्न द्वारा प्रकरण का आरंभ करके उत्तर दिया है कि "तीन हजार तीनसौ छत्तीश ३३३६ देवता हैं"। वैश्व-देव शस्त्र के निवित् संज्ञक पाठ में इतने ही मध्यम कोटिस्थ देवता गिनाये हैं। ऐसा कह कर "वे देवता कौन २ हैं" ऐसा पूछने पर उत्तर दिया है कि "वास्तव में देवता तो तैंतीश ३३ ही हैं, शेष जितने अधिक कहे जांय वे सब इन्हीं तैंतीश की महिमा अर्थात रूपान्तर हैं" ऐसा कहती हुई श्रुति एक २ देवता के एक ही काल में अनेक रूप दिखाती है (तथा एक वेद मन्त्र में लिखा है कि [एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः] रुद्रदेवता एक ही हैं द्वितीय की उपासना किन्हीं लोगों ने नहीं की है। और शुक्ल यजु० अ० १६ मं०५४ में [असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्] असंख्य हजारों रुद्रदेवता जो भूमि पर हैं वैसे ही अन्तरिक्ष लोक तथा स्वर्गलोक में भी असंख्य हजारों हैं। ये सब असंख्य रुद्र भी एक ही रुद्र की रूपान्तर महिमा कही हैं। और मध्यम कोटि में तैंतीश के अन्तर्गत ११ रुद्र हैं जो अध्यात्म कक्षा में प्राणादि रूप से दिखाये हैं। इस प्रकार वेद में संकोच विकाश नाना रूप से देवतों का व्याख्यान है) तथा तैंतीश देवताओं का भी छः आदि में अन्तर्भाव दिखाने के क्रमसे प्रश्न किया गया कि "एक देव कौन है,, उस का उत्तर दिया कि "एक देवता प्राण है,, इस प्रकार तैंतीश देवताओं का एक प्राण रूप दिखाती हुई श्रुति उसी एक प्राण के एक ही काल में अनेक रूप दिखाती है। तथा स्मृति में भी लिखा है कि "योग बल को प्राप्त हो कर योगी पुरुष अपने एक ही शरीर के एक साथ बहुत शरीर बना लेता है। उन सब शरीरों से पृथिवी पर विचरता किन्हीं शरीरों से विषयभोग करता और किन्हीं से प्रबल तप करता है। फिर अन्त में अस्त होते समय जैसे सूर्य नारायण अपनी किरणों को अपने में लीन कर लेते हैं वैसे ही योगी पुरुष अपने सब शरीरों को एक में लय कर लेता है,, ये श्लोक महाभारत मोक्षधर्म के हैं। इत्यादि प्रकार की स्मृति अणिमादि अष्ट सिद्धियों को प्राप्त हुए यो-गियों को भी एक काल में अनेक शरीर धारण करलेने की शक्ति होना दि-

खाती है तो जो देवता स्वाभाविक सिद्ध हैं उनके लिये कहना ही क्या है ?। (तथा न्यायदर्शन अ० ३। आ०२ सू०१९ पर वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि [योगी खलु ऋद्धौ प्रादुर्भूतायां विकरणधर्मा निर्माय सेन्द्रियाणि शरीरान्तराणि तेषुतेषु युगपज्ज्ञेयान्युपलभते] योगसिद्धियों के प्राप्त होने पर योगी पुरुष इन्द्रियों सहित अपने अनेक शरीर रूप बनाकर उन २ में एक ही काल में अनेक शरीरों द्वारा अनेक प्रदेशों में अनेक विषयों को प्राप्त होता है। अर्थात् एक ही काल में एक योगी मनुष्य के भी जब अनेक रूप होने सिद्ध हैं तो देवतों के अनेक रूप होने में शंका ही क्या है ?) देवताओं के अनेक रूप हो सकने से एक२ देवता अपने अनेक विभक्त रूप बनाके बहुत यज्ञों में एक ही काल में एक साथ अनेक रूपों से आ सकते हैं। और देवता अन्तर्धानादि शक्तियों वाले होने से उन ऋत्विग्यजमानादि मनुष्यों को आये हुए नहीं दीख पड़ें यह सब सिद्ध हो जाता है ॥

(अनेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्) इन सूत्रस्थ पदों का दूसरा व्याख्यान यह है कि-कर्माङ्ग होने की प्रेरणाओं में विग्रहवाले साकार प्राणियों की भी अनेक नाम दो प्रकार की रीति दीखती है। कहीं एक भी साकार मनुष्य एक साथ एक काल में अनेकों के यहां काम नहीं देसकता,जैसे बहुत से भोजन कराने वाले मनुष्य एक काल में एक ब्राह्मण को अपने२ घर में बुला के भोजन नहीं करा सकते। और कहीं एक भी साकार व्यक्ति अनेकों के यहां एक ही काल में सब का काम पूरा करती है। जैसे नमस्कार प्रणाम करनेवाले बहुत मनुष्य एक काल में एकही ब्राह्मण को नमस्कार कर सकते हैं। उसी के अनुसार देवता के उद्देश से अग्नि आदि में समर्पण करना यज्ञ का स्वरूप होने से एक साकार देवता के उद्देश से भी सब लोग एक ही काल में अपनी२ आहुति छोड़ेंगे। इस प्रकार देवताओं के साकार होने पर भी कर्म में कुछ विरोध नहीं आसकता है ॥

अब आगे २८ से ३० सूत्र तक तीन सूत्रों के भाष्य का संक्षेप से भाषा में अभिप्राय मात्र लिखते हैं। क्योंकि सब भाष्य तथा पूरा२ अनुवाद लिखने से विस्तार अधिक होजायगा। सू० २८ में पूर्व पक्ष यह किया गया है कि-यदि देवता साकार माने जावें तो मनुष्यादि के तुल्य उत्पत्ति विनाशवाले अनित्य होंगे। तब नित्य पदार्थों के बोधक होनेसे वैदिक पद वाक्यों का नित्य होना जो सिद्ध किया

जा चुका है कि शब्द का अर्थ के साथ नित्य सम्बन्ध होने से शब्द प्रमाण रूप वेद नित्य है। उस वेद के नित्यत्व में देवताओं के साकार मानने से विरोध आवेगा। इस का उत्तर यह है कि-श्रुतिस्मृति रूप प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणों द्वारा सिद्ध है कि वेद के शब्दों को देख२ वा विचार२ के जैसे२ नाम रूप वाली देवादि सृष्टि वेद से प्रतीत हुई वैसी २ ज्यों की त्यों नाम रूपवाली देवादि सृष्टि विधाता ने बनायी। सो जब सृष्टि बनने से पहिले ही साकार देवादि सृष्टि का वर्णन वेद में विद्यमान था तो देवादि व्यक्तियों के उत्पत्ति धर्मक होने से अनित्य सिद्ध होने पर भी वेद अनित्य नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्यादि उत्पत्ति धर्मक चर अचर सब प्रकार की सृष्टि का वर्णन भी तो वेद में विद्यमान है। द्वितीय यह भी शास्त्रीय सिद्धान्त ध्यान में रखने योग्य है कि मनुष्य पश्वादि का जन्म मरण प्रवाह चलते हुए भी मनुष्य पश्वादि जाति नष्ट नहीं होती और मनुष्यादि शब्द आकृति बोधक माने जाते हैं किन्तु व्यक्तिवाचक नहीं सो आकृति जैसे मनुष्यादि की नित्य है वैसे ही देवादि व्यक्तियों का अनित्यत्व स्वीकार हो जाने पर भी आकृतियों के नित्य होने से वेद के साथ शब्दार्थ सम्बन्ध की नित्यता सिद्ध हो जाती है। और देवतादि की आकृति विशेष का होना मन्त्र ब्राह्मणादि प्रमाणों द्वारा साकार सिद्ध होने से मान लेना चाहिये। क्योंकि जब देवादि के साकार होने के लिये सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं और यह भी सर्वव्यापी नियम है कि साकार व्यक्तिमान् वस्तु की आकृति भी अवश्य होती है तब देवादि के साकार होने से उनकी आकृति स्वतः सिद्ध होगयी। और देवता विशेष एक प्रकार के अधिकार बोधक सेनापत्यादि के तुल्य हैं। जैसे एक सेनापति के नष्ट होजाने पर भी सेनापति नहीं मरता उसी अधिकार पर तत्काल ही दूसरा नियत हो जाता है। इसी प्रकार इन्द्रादि एक२ अधिकार के नाम हैं जो२ उस२ अधिकार पर नियत होता है वही इन्द्र कहाता है इस प्रकार अधिकार बोधक होने से भी इन्द्रादि देवता नित्य सिद्ध होते हैं।

सू० २९ का आशय यह है कि वेद में जिन२ की जैसी२ आकृति कही गयी हैं वैसा२ ही देवादि जगत् विधाता ने रचा और प्रत्येक कल्प में वैसे२ ही देवतादि को बनाता है इस कारण रचना के वेदाधीन रहने से वेद के शब्दों का नित्य होना भी सिद्ध है। तथा (यज्ञेन वाचः० ऋ० ८।२।२३) मन्त्र से भी वेद शब्दों का नित्यत्व ही सिद्ध होता है॥

सू० ३० का अभिप्राय यह है कि-जब कल्प प्रलय तथा महाप्रलय के समय सभी त्रिलोकी भर नामरूपों सहित सब का सब संसार प्रलय हो जाता और फिर२ नया उत्पन्न होता है तब जात्याकृति सभी का अनित्य होना सिद्ध हो गया फिर इन सब अनित्य देवादि के वाचक वेद शब्द नित्य कैसे हो सकते हैं ? । और जब नित्य न हुए तो देवताओं के साकार मानने पर वेद शब्दों के नित्य होने का विरोध कैसे निवृत्त हो सकता है ? । इस का समाधान यह है कि (सूर्याचन्द्रमसौ धाता०) इत्यादि श्रुति का अभिप्राय यों जानो कि पूर्व कल्पों के तुल्य ही परमेश्वर सूर्यचन्द्रमादि जगत् को प्रत्येक कल्पों में रचता है । तथा स्मृतियों के प्रमाण भी अनेक हैं कि—

यथाभिमानिनोऽतीता-स्तुल्यास्तेसाम्प्रतैरिह ।
देवादेवैरतीतैर्हि रूपैर्नामभिरेवच ॥

अर्थ-जैसे२ अभिमान वाले देवता मनुष्यादि पूर्वकल्पों में हो चुके हैं वैसे वैसे पूर्व के ही नामरूपों वाले देवादि अगले २ कल्पों में भी होते हैं। उनकी बनावट नामरूपादि में ऐसा कुछ भी भेद नहीं पड़ता जिस से वे अन्य समझे जावें । जैसे एक वृक्ष के सब पत्ते गिर कर फिर उतने ही नये पत्ते निकलें तब क्या पहिले और नये पत्तों में कुछ भेद हुआ कोई सिद्ध कर सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं । (ऋषीणां नामधेयानि०) वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाजादि ऋषियों के नाम रूप और कर्म भी प्रत्येक कल्पों में लौट २ कर ज्यों के त्यों होते हैं । इस कारण उन ऋषि देवता आदि का महाप्रलय के समय लय हो जाना सोजाने के तुल्य है । अथवा प्रलय भी एक प्रकार की निद्रा है । और निद्रा वा सोजाना भी एक प्रकार का प्रलय है । इसी कारण मृत्यु होने का नाम महानिद्रा रक्खा गया है । और वेद के रात्रिसूक्तों में रात्रि और प्रलय का एक ही रूप से वर्णन किया गया है । चाहें यों कहो कि प्रतिदिन आनेवाली इन लोगों की रात्रि-प्रलय वा महाप्रलय की रात्रि का एक नमूना है वा यह रात्रि उस महारात्रि की बच्ची वा छोटी बहन है । (कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् अ० ३ खं०३)में स्वप्न के साथ ही प्रलय की दशाका और जागने के साथही उत्पत्ति क्रम का वर्णन किया है इस से भी स्वप्न और प्रलय तथा सृष्टि और जागरण एक ही सिद्ध होते हैं । अन्तर केवल इतना ही विशेष कर है कि स्थूल दशा में वा स्थूल शरीरादि में इन्द्रियों का और साथ ही रूपादि विषयों का लय होना निद्रा कहाती और सूक्ष्मांशों

में स्थूलांशों में लय होना प्रलय कहाता है। परन्तु जो सोकर जागा है वह अपने को वही कहता मानता है कि जो सोने से पहिले था। इसी के अनुसार जो देवादि प्रलीन हो कर सर्गारम्भ में फिर उत्पन्न होते वा जागते हैं वे भी अपने को वही मानते हैं कि जो प्रलय होनेसे पहिले थे। क्योंकि जो वस्तु अपने सूक्ष्म कारण रूप में अदृष्ट हो जाता है वह उस सूक्ष्म रूप में भी वैसा ही विद्यमान होता है कि जैसा स्थूल रूप में था। इसी कारण तो उस २ का स्थूल रूप वैसा २ ही फिर २ हो जाता है। यदि वट पीपल आदि के बीजों में सूक्ष्म वृक्ष के अवयव वैसे ही विद्यमान नहीं तो उन २ बीजों से वैसा २ ही स्थूल वृक्ष क्यों कर हो सके ?। इसी प्रकार बीज के बीज में भी अचिन्त्य सूक्ष्म रूप से संसार के विद्यमान होने का भान ही द्वैत का मूल है।

इस ऊपरी लेख का सूक्ष्म सारांश यह है कि यह देवादि संसार प्रवाह से अनादि है। केवल सोने जागने के तुल्य प्रलय तथा उत्पत्ति वार २ वैसी ही होती है इस से प्रवाह नित्यता को लेता हुआ देवतादि का प्रतिपादक वेद अनित्य नहीं हो सकता।

सू०—मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ॥ ३१ ॥

इह देवादीनामपि ब्रह्मविद्यायामस्त्यधिकार इति यत्प्रतिज्ञातं तत्पर्यावर्त्यते। देवादीनामनधिकारं जैमिनिराचार्य्यो मन्यते। कस्मात्-मध्वादिष्वसंभवात्। ब्रह्मविद्याधिकाराभ्युपगमे हि विद्यात्वाविशेषान्मध्वादिविद्यास्वप्यधिकारोऽभ्युपगम्येत। न चैवं सम्भवति, कथम्-"असौ वा आदित्यो देवमधु" इत्यत्र मनुष्या आदित्यं मध्वध्यासेनोपासीरन्,देवादिषु ह्युपासकेष्वभ्युपगम्यमानेषु-आदित्यः कथमन्यमादित्यमुपासीत ?। पुनश्चादित्यव्यपाश्रयाणि पञ्च रोहितादीन्युपक्रम्य वसवो रुद्रा आदित्या मरुतः साध्याश्च पञ्च देवगणाः क्रमेण तत्तदमृतमुपजीवन्तीत्युपदिश्य "स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाऽग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति" इत्यादिना वस्वाद्युपजीव्यान्यमृतानि वि-

जानन्तां वस्वादिमहिमप्राप्तिं दर्शयति। वस्वादयस्तु कानन्यान् वस्वादीनमृतत्वोपजीविनो विजानीयुः,कं चान्यं वस्वादिमहिमानं प्रेप्सेयुः ?। तथा "अग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पादः, वायुर्वाव संवर्गः, आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः" इत्यादिषु देवतात्मोपासनेषु न तेषामेव देवतात्मनामधिकारः सम्भवति । तथा "इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाजः" इत्यादिषु ऋषिसम्बन्धेषूपासनेषु न तेषामेवर्षीणामधिकारः सम्भवति । कुतश्च न देवादीनामधिकारः ?–

सू०–ज्योतिषि भावाच्च ॥ ३२ ॥

यदिदं ज्योतिर्मण्डलं द्युस्थानमहोरात्राभ्यां बंभ्रमज्जगदवभासयति तस्मिन्नादित्यादयो देवतावचनाः शब्दाः प्रयुज्यन्ते लोकप्रसिद्धेर्वाक्यशेषप्रसिद्धेश्च । न च ज्योतिर्मण्डलस्य हृदयादिना विग्रहेण चेतनतयाऽर्थित्वादिना वा योगोऽवगन्तुं शक्यते । मृदादिवदचेतनत्वावगमात् । एतेनाग्न्यादयो व्याख्याताः । स्यादेतत्,मन्त्रार्थवादेतिहासपुराणलोकेभ्यो देवादीनां विग्रहवत्त्वाद्यवगमादयमदोषइति चेन्नेत्युच्यते । न तावल्लोको नाम किंचित्स्वतन्त्रं प्रमाणमस्ति, प्रत्यक्षादिभ्यएव ह्यविचारितविशेषेभ्यः प्रमाणेभ्यः प्रसिद्ध एवार्थो लोकात्प्रसिद्धइत्युच्यते । न चात्र प्रत्यक्षादीनामन्यतमं प्रमाणमस्ति। इतिहासपुराणमपि पौरुषेयत्वात्प्रमाणान्तरमूलतामाकाङ्क्षति । अर्थवादा अपि विधिनैकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थाः सन्तो न पार्थगर्थ्येन देवादीनां विग्रहादिसद्भावे कारणभावं प्रतिपद्यन्ते । मन्त्रा अपि स्तुत्यादिविनियुक्ताः प्रयोगसमवायिनोऽभिधानार्था न कस्यचिदर्थस्य